BHDC-105

छायावादोत्तर हिंदी कविता

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

BHDC-105
छायावादोत्तर हिंदी कविता

खंड

1

इकाई 1
प्रगतिवाद : स्वरूप और विकास

इकाई 2
प्रयोगवाद और नयी कविता : स्वरूप और विकास

इकाई 3
समकालीन कविता : स्वरूप और विकास

इकाई 4
केदारनाथ अग्रवाल

इकाई 5
नागार्जुन

इकाई 6
रामधारी सिंह 'दिनकर'

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 प्रगतिवाद : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 प्रगतिवाद : पृष्ठभूमि
    1.2.1 युगीन परिस्थितियाँ
    1.2.2 साहित्यिक पृष्ठभूमि
1.3 प्रगतिवाद शब्द का प्रयोग और अर्थ
1.4 प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु
    1.4.1 ऐतिहासिक चेतना
    1.4.2 सामाजिक यथार्थदृष्टि
    1.4.3 परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव
    1.4.4 जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण
    1.4.5 मानवीय संबंधों में समानता
    1.4.6 भविष्योन्मुखी दृष्टि
1.5 प्रगतिवाद का अभिव्यंजना शिल्प
    1.5.1 रूप या शिल्प
    1.5.2 भाषा : काव्य भाषा (अलंकार, बिंब, प्रतीक)
    1.5.3 मूर्तिविधान : ऐतिहासिक मूर्तता
    1.5.4 छंद–लय
1.6 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि
    1.6.1 नागार्जुन
    1.6.2 केदारनाथ अग्रवाल
    1.6.3 शमशेर बहादुर सिंह
    1.6.4 गजानन माधव मुक्तिबोध
    1.6.5 त्रिलोचन
1.7 प्रगतिवाद का महत्व
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास
1.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
1.11 उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगी/सकेंगे कि :

- प्रगतिवाद आंदोलन का क्या अर्थ है?

- प्रगतिवाद के आरंभ होने के पीछे क्या कारण रहे हैं?
- प्रगतिवाद आंदोलन की सीमा क्या है?
- प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु में ऐतिहासिक चेतना, वर्गचेतन प्रधान दृष्टि और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का क्या अर्थ है?
- प्रगतिवाद काव्य का रूप और शिल्प कैसा है? और,
- प्रमुख प्रगतिवादी कवि कौन–कौन हैं?

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद आंदोलन के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। हम आपको यह स्पष्ट कर दें कि 'प्रगतिवाद' एक साहित्यिक आंदोलन तो है किन्तु सभी 'वाद' आंदोलन के रूप में विकसित नहीं होते। जैसे 'छायावाद' एक व्यापक साहित्य प्रवृत्ति है तो 'प्रयोगवाद' एक काव्य प्रवृत्ति। किन्तु प्रगतिवाद एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में ही विकसित हुआ। अतः उसे कथा साहित्य, काव्य, आलोचना अर्थात् समस्त साहित्यिक विधाओं में अभिव्यक्ति मिली। इस इकाई में हम 'प्रगतिवाद' के स्वरूप और विकास की चर्चा कविता के संदर्भ में करेंगे। अतः प्रगतिवादी काव्य की सामान्य विशेषताओं को बताते हुए हम प्रमुख प्रगतिवादी कवियों का परिचय भी देंगे। आप देखेंगे कि किस प्रकार एक साहित्यिक आंदोलन पैदा होता है, कैसे उसका विकास होता है और समाज से उसका कैसा रिश्ता बनता है।

1.2 प्रगतिवाद : पृष्ठभूमि

प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि के रूप में हम उस युग की उन परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जिनके कारण प्रगतिवाद एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में पैदा हुआ।

1.2.1 युगीन परिस्थितियाँ

प्रगतिवाद का उदय सन् 1930 के बाद हुआ। सन् 1930 तक विश्व में प्रथम महायुद्ध और रूस की क्रांति जैसी घटनाएँ घट चुकी थीं। रूस में जारशाही के खिलाफ की गई सफल क्रांति का प्रभाव धीरे–धीरे विश्व में बाकी जगह पड़ना शुरू हो गया था। भारत में आजादी का आंदोलन जोर पकड़ रहा था और 1930 तक राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस में वामपंथी दल कायम हो चुका था। किसान, मजदूर आंदोलन एकजुट होकर शक्तिशाली हो रहे थे। साहित्य में प्रेमचंद 'गबन' (1930) में यह उम्मीद बंधा रहे थे कि पांच–दस बरस बाद समाज और राजनीति में किसानों, मजदूरों की जगह महत्वपूर्ण होगी। सविनय अवज्ञा आंदोलन, लगान बंदी आंदोलन, किसान सभा की स्थापना की दिशा में प्रयत्न –ये घटनाएँ भारतीय समाज में हो रहे सक्रिय बदलाव को सूचित कर रहीं थीं। इसके बाद विश्व और भारत में घटने वाली प्रमुख घटनाओं (द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न संकट, बंगाल का अकाल, नौ सेना विद्रोह, हिंदुस्तान–पाकिस्तान का विभाजन, मुस्लिम सांप्रदायिक दंगे, कांग्रेस के हाथों में शासन सत्ता का आना) के बारे में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं – 'इन घटनाओं ने कमोबेश हमारी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति को भी प्रभावित किया। निम्न मध्य वर्ग की स्थिति पहले से भी अधिक खराब हुई और किसान मजदूरों में भयंकर असंतोष फैला।' (आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 92)। इन्हीं युगीन परिस्थितियों

के कारण वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष की भावना पैदा हुई और यही भावना प्रगतिवाद की यथार्थ दृष्टि की प्रेरक तत्व बनी तथा साहित्य में प्रगतिवाद के विकास का आधार भी।

1.2.2 साहित्यिक पृष्ठभूमि

प्रगतिवाद जब शुरू हुआ उस समय साहित्य में छायावाद एक साहित्य प्रवृत्ति के रूप में अपने विकास के बाद अब उतार पर था। यह तो आप जानते ही हैं कि कोई भी साहित्यिक आंदोलन या साहित्यिक प्रवृत्ति एकाएक प्रकट नहीं हो जाती। उसके लक्षण पहले से ही साहित्य में प्रकट होने लगते हैं। इसी प्रकार प्रगतिवाद से पहले छायावाद में सामाजिक यथार्थ की चेतना प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होने लगी थी। कविता कवि के मन की गुफा से बाहर निकल कर अपना यथार्थपरक सामाजिक उत्तरदायित्व महसूस कर रही थी। 1921 में निराला ने कविता लिखी – 'जब कड़ी मारें पड़ी, दिल हिल उठा'। 1929 में 'परिमल' की भूमिका में निराला ने कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति के प्रश्न से जोड़ा। छायावाद धीरे–धीरे सूक्ष्मता की ओर बढ़ता हुआ दुर्बोध होता जा रहा था। यह सही है कि छायावादी काव्य ने यदि एक ओर द्विवेदी युगीन अभिधात्मकता के विरोध में सांकेतिकता, कल्पना और भाषा के धरातल पर काव्य को गरिमा प्रदान की तो दूसरी ओर व्यक्ति और प्रकृति और प्रेयसी नारी को तथा व्यक्ति के भीतरी संसार को तथा उसके अस्तित्व के प्रश्न को भी काव्य का विषय बनाया किन्तु व्यक्ति के सामाजिक यथार्थ को वह साहित्य का विषय नहीं बना सका। पंत ने भी स्वीकार किया कि छायावाद में युग को वाणी देने की शक्ति नहीं रह गयी थी। 'ग्राम्या', 'युगवाणी' के पीछे नये यथार्थ की चेतना स्पष्ट है। निराला ने आगे चलकर 'कुकरमुत्ता' और 'नये पत्ते' में प्रगतिवादी काव्य दृष्टि को मजबूत आधार दिया। अतः कविता की अन्तर्वस्तु और रचनाविधान में परिवर्तन करके, व्यक्ति सीमित या रहस्यमय रूमानी वृत्ति का त्याग करके छायावादी कवियों ने ही प्रगतिवाद का रास्ता तैयार किया।

1.3 'प्रगतिवाद' शब्द का प्रयोग और अर्थ

कुछ लोग प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में विरोध करते है। इनका मानना है कि प्रगतिशील शब्द अधिक व्यापक है – और इसमें मानव के व्यापक सरोकार जुड़ते हैं और प्रगतिवाद शब्द केवल उस साहित्य का बोध कराता है जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित होकर या उसके आधार पर लिखा गया हो। वस्तुतः प्रगतिवाद और प्रगतिशील शब्द का झगड़ा कोरा बुद्धिविलास है। आज प्रगतिवाद शब्द से अभिप्राय उस साहित्यिक प्रवृत्ति से है, जिसमें एक प्रकार की इतिहास चेतना, सामाजिक यथार्थ दृष्टि, वर्ग चेतन विचारधारा, प्रतिबद्धता या पक्षधरता, गहरी जीवनासक्ति, परिवर्तन के लिये सजगता और एक प्रकार की भविष्योन्मुखी दृष्टि मौजूद हो। रूप के स्तर पर प्रगतिवाद एक सीधी–सहज–तेज–प्रखर, कभी व्यंग्यपूर्ण आक्रामक काव्यशैली का वाचक है।

वैसे प्रगतिशील साहित्य अंग्रेजी के 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का अनुवाद है। अंग्रेजी में इस शब्द का प्रयोग 1935 ई. के आसपास हुआ जब पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नामक संस्था का पहला अधिवेशन हुआ। हिंदुस्तान में इसके एक वर्ष बाद ही 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में हुआ जिसके अध्यक्ष थे – प्रेमचंद।

प्रगतिवाद : सीमा और व्याप्ति

प्रगतिवाद का विरोध करने वाले ही उसकी सीमा यह बताते रहे हैं कि वह मार्क्सवाद का साहित्यिक रूपांतर मात्र है। पर यह सब जानते हैं कि यदि प्रगतिवाद नाम से परिचित काव्य प्रवृत्ति के महत्वपूर्ण कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध और त्रिलोचन जैसे बड़े कवि हैं तो उनका काम केवल मार्क्सवाद के सिद्धांत विवेक के जरिए नहीं चल सकता। मार्क्सवाद में उनकी आस्था जहाँ व्यापक जीवन ज्ञान में और गहरी जीवनासक्ति में सहायक हुई है वहीं वे प्रगतिवाद को समर्थ काव्य प्रवृत्ति के रूप में विकसित करने के लिये, यथार्थ के नये रूपों की समझ के अनुरूप, नयी काव्य शैली का विकास करते रहे हैं।

वैसे एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रगतिवाद का इतिहास मोटे तौर पर 1936 ई. से शुरू होने के बाद के लगभग बीस वर्षों का इतिहास है किन्तु यह 'साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भावभूमि और उच्च विचार के निरंतर विकास का इतिहास है, जो न केवल राजनीतिक जागरण से आरंभ होकर क्रमशः जीवन की व्यापक समस्याओं की ओर, आदर्शवाद से आरंभ होकर क्रमशः यथार्थवाद की ओर और यथार्थवाद से आरंभ होकर क्रमशः स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है''। (आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 84)।

अतः व्यापक अर्थों में प्रगतिवाद न स्थिर मतवाद है न स्थिर काव्य रूप। उसमें निरंतर विकास हुआ है। आज प्रगतिशीलता के व्यापक अर्थ में ऐतिहासिक चेतना, जीवन विवेक, जीवनानुभवों के विस्तार, यथार्थ के मूल रूपों की समझ, जीवनधर्मी सौन्दर्यबोध, प्रकृतिबोध का उल्लेख किया जाता है, फिर भी जीवन को देखने की यथार्थवादी दृष्टि विशेष अर्थ में मार्क्सवादी दृष्टि को यहां प्रमुखता प्राप्त है। प्रगतिवाद के विकास में अपना योगदान देने वाले परवर्ती कवियों में केदारनाथ सिंह, धूमिल, कुमार विमल, अरुण कमल, राजेश जोशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न –1

सही उत्तर पर चिह्न लगाइये।

1. प्रगतिवाद एक . . .
   क) प्रवृत्ति है
   ख) आंदोलन है

1. प्रगतिवादी साहित्यिक आंदोलन.....
   क) विदेशी विचारधारा का प्रतिफलन है।
   ख) युगीन परिस्थितियों की देन है

2. प्रगतिवाद किसे कहते हैं, चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   .....
   .....
   .....
   .....

1.4 प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु

प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु में ऐतिहासिक चेतना अर्थात् अपने समय, अपने युग की समझ, सामाजिक यथार्थ दृष्टि जिसे वर्गचेतन प्रधान दृष्टि भी कहा जाता है तथा अपने परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रमुख बिन्दु हैं। इसके अतिरिक्त प्रगतिवादी कवि मानवीय संबंधों में समानता का पक्षधर है। वर्ग विभाजित समाज में वो परिवर्तन की भी कल्पना करता है अतः भविष्य के प्रति वो आशावान है। प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु की इन विशेषताओं को आइये विस्तार से समझें।

1.4.1 ऐतिहासिक चेतना

प्रगतिवादी काव्य की अंतर्वस्तु में ऐतिहासिक चेतना महत्वपूर्ण है। प्रगतिवाद कवि को कालातीत होने की छूट नहीं देता। अपने समय का विवेक, अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकता का बोध यही ऐतिहासिक चेतना है। प्रगतिवाद में कविता और राजनीति का जो घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है वह इसी चेतना का परिणाम है। 'शासन की बन्दूक' नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता है। इसमें सत्ता द्वारा किए जा रहे बर्बर दमन का चित्र है और कवि में पैदा हुई विद्रोह भावना का भी संकेत है। यह दमन यदि निश्चित ऐतिहासिक समय का संकेत करता है तो विद्रोह भाव भी एक समय–विशेष की सूचना देने वाला है।

खड़ी हो गयी चांपकर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट सी यह शासन की बन्दूक
उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक
जिसमें कानी हो गयी शासन की बन्दूक।

सत्य स्वयं घायल हुआ, गयी अहिंसा चूक
जहां तहां दगने लगी शासन की बन्दूक
जली ठूंठ पर बैठ कर गयी कोकिला कूक
बाल न बांका कर सकी शासन की बन्दूक।

वह तानाशाही व्यवस्था अपने ही समय की है जिसके आगे लम्बे संघर्ष से प्राप्त मूल्य (अहिंसा/सत्य) व्यर्थ हो गये हैं। कोकिला भी इसी अपने समय की है जो दमनचक्र का प्रतिरोध करती है – वह जली ठूँठ पर बैठकर कूकती है अर्थात् दमन चक्र की धज्जियाँ उड़ाती है। मुक्तिबोध जैसे कवि के यहाँ यह ऐतिहासिक चेतना अधिक सघन और जटिल होकर आती है।

1.4.2 सामाजिक यथार्थ–दृष्टि

प्रगतिवादी कवि के पास सामाजिक यथार्थ को देखने की विशेष दृष्टि होती है। एक **वर्गचेतन प्रधान दृष्टि**। नागार्जुन यदि दुखरन झा जैसे प्राइमरी स्कूल के अल्पवेतनभोगी मास्टर का यथार्थ चित्र अंकित करते हैं तो सामाजिक विषमता के यथार्थ को ध्यान में रखते हुए इस सरल यथार्थ को कविता में व्यक्त करने के लिए भी यथार्थ रूपों की समझ जरूरी है। कवि का वास्तव बोध और वस्तुपरक निरीक्षण दोनों पर ध्यान जाना चाहिए।

घुन खाये शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है छत चूती है आले पर विसतुइया नाचे
बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट–मिनट में पाँच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।

नागार्जुन जैसे प्रगतिशील–यथार्थवादी कवि की दृष्टि सामाजिक यथार्थ के अनेक रूपों की ओर जाती है। कभी सामाजिक यथार्थ का वह भयानक रूप सामने आता है जो बहुत अधिक विक्षुब्ध कर जाता है। यह प्रखर सात्विक क्रोध भी ध्यान देने योग्य है – (सामाजिक विषमता से पैदा होने वाली पीड़ा पर ध्यान जाना चाहिए)।

मन करता है
मैं नंगा होकर चिल्लाऊँ
.....
मन करता है
मैं उस अगस्त्य–सा पी डालूँ सारे समुद्र को अंजलि से
उस अतल वितल में तब मुझको
मुर्दा भगवान दिखाई दे
उस महामृतक को ले आऊँ फिर इस तट पर
अंत्येष्टि करूँ, लकड़ी तो बेहद महँगी है
इस बालू में दफना दूँ
नंगा करके।

इसका यह अर्थ नहीं कि प्रगतिवादी काव्य का यथार्थबोध सर्वत्र एक–सा है। उसकी शक्ति है– उसकी बहुरूपात्मक विविधता।

1.4.3 परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव

प्रगतिवाद में प्रकृति और परिवेश के प्रति कवि का लगाव भी ध्यान आकृष्ट करता है। बाँदा की, बुन्देलखंड की प्रकृति केदारनाथ अग्रवाल की कविता में इतनी सहज रची–बसी है कि वह कविता का सबसे प्रेरक तत्व जान पड़ती है। प्रगतिवादी कवि प्रकृति में जिस जीवन सक्रियता का आभास पाता है उसके लिए एक प्रकार का स्थानिक लगाव जरूरी है।

चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया
गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा, किया कान में 'कू'
उतर कर भगी मैं हरे खेत पहुँची
वहाँ गेहुँओं में लहर खूब मारी,
पहर दो पहर क्या, अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं।

प्रगतिवादी कवि के यहाँ प्रकृतिबोध भी यथार्थबोध, सामाजिक वास्तविकता के अनुभव से विच्छिन्न नहीं है। नागार्जुन के लिए धूप केवल लभाने वाली नहीं है वह तीखे यथार्थ को सामने लाने में सहायक है –

पूस–मास की धूप सुहावन
घिसे हए पीतल–सी पांडुर
पूस–मास की धूप सुहावन
स्तनपायी निरोगी गौर छवि
शिशु के गालों जैसी मनहर
पूस–मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर–रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भ–भार से अलस शिथिल है अंग–अंग
मुँह पर उसके मटमैली आभा
छप्पर पर बैठी है बिल्ली
किसके घर से जाने क्या कुछ खा आयी है
चला–चला कर जीभ स्वाद लेती ओठों का।

प्रकृति में जो 'धूप सुहावन' है वह गरीबी का तीखा दुखद चित्र उपस्थित करने वाली है। दो स्थितियों का यह तनाव महत्वपूर्ण है। उसी से कविता बड़ी कविता बनती है।

1.4.4 जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण

प्रगतिशील कवि जीवन की स्वीकृति के कवि हैं। जीवनधर्मी लगाव उनके यहाँ रेखांकित करने की चीज है। 'मुझे विश्वास है यह पृथ्वी रहेगी' यह सकारात्मक दृष्टिकोण प्रगतिवाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। जहाँ आधुनिकतावादी रुझान वाले कवि हताश, पस्ती, निराशा, असहायता, अजनबीपन को अनुभवों में महत्वपूर्ण मानकर चलते हैं वहाँ प्रगतिवादी कवि कठिन अंधकार और भयानक निराशा में भी एक प्रकार के सकारात्मक दृष्टिकोण को जीवित रखता है। गजानन माधव मुक्तिबोध के यहाँ अंधकार, संकट, निराशा और भय के बिंब बार–बार आते हैं पर वहीं सार्थक भविष्य की आकांक्षा भी अभिव्यक्ति प्राप्त करती है –

आत्म विस्तार यह
बेकार नहीं जायेगा
जमीन में गड़ी हुई देहों की खाक से
शरीर की मिट्टी से, धूल से
खिलेंगे गुलाबी फूल।
सही है कि हम पहचाने नहीं जाएँगे।
दुनिया में नाम कमाने के लिए
कभी कोई फूल नहीं खिलता है
हृदयानुभव–राग–अरुण

गुलाबी फूल, प्रकृति के गन्ध–कोष
काश, हम बन सकें।

(एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन)

1.4.5 मानवीय संबंधों में समानता

इसे भी स्पष्ट अर्थ में देखना चाहिए। बिना भेद किए सभी मनुष्यों के प्रति प्रेम – यह प्रगतिवादी कवि को स्वीकार्य नहीं है। शोषक–शोषित वर्गों का भेद उपेक्षणीय नहीं है पर व्यापक अर्थ में मानवीय संबंधों में समानता उसके लिए आदर्श है। 'नगई महरा' काव्यनायक हो सकते हैं। देवी सरस्वती भद्रकुलीन विद्वानों के यहाँ ही नहीं, किसानों के यहाँ भी आ सकती हैं। संघर्ष में स्त्री–पुरुष समानता महत्व की चीज है। इससे प्रगतिवादियों के वस्तु बोध, सौन्दर्य बोध में भिन्नता आई है। हरिजनगाथा (नागार्जुन) में नवजातक को जो गौरव दिया गया है, संत गरीबदास द्वारा उसका जो भविष्य लेख पढ़ा गया है, महत्वपूर्ण और साभिप्राय संकेत है –

होगा यह भारी उत्पाती
जुलम मिटायेंगे धरती से
इसके साथी और संघाती।

केदारनाथ अग्रवाल ने पत्नी के प्रति सहज स्वरूप आकर्षण या प्रेम को जो अभिव्यक्ति दी है वह इसी समानता के विवेक से आलोकित है।

1.4.6 भविष्योन्मुखी दृष्टि

प्रगतिवादी कवि यथास्थितिवादी नहीं हैं। वे सामाजिक परिवर्तन के पक्ष में हैं। सामाजिक परिवर्तन की उनकी कल्पना स्वच्छन्द स्वेच्छाचारी या अराजक नहीं है। वे वांछित दिशा में ही परिवर्तन की कल्पना करते हैं या प्रयत्न करते हैं। कविता उनके लिए सक्षम माध्यम है। भविष्योन्मुखी दृष्टि के अभाव में परिवर्तन की कामना का कोई अर्थ नहीं। यह नागार्जुन और मुक्तिबोध जैसे कवि बखूबी जानते हैं। भविष्योन्मुखी दृष्टि के अभाव में यह साहसपूर्ण स्वर अकल्पनीय है।

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको
नीलीझील की लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक।

अरुण कमल भविष्य की ही कल्पना है, भविष्य का ही प्रतीक है।

बोध प्रश्न– 2

1. कोष्ठकों में दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।

   क) प्रगतिवादी काव्य की अंतर्वस्तु में .....चेतना महत्वपूर्ण है। (वैयक्तिक / दार्शनिक / ऐतिहासिक)

   ख) प्रगतिवादी काव्य दृष्टि ..... दृष्टि है। (व्यक्तिचेतना प्रधान / वर्गचेतना प्रधान / वर्गहीन)

   ग) प्रगतिवादी कवि का प्रकृतिबोध .....से अनुप्राणित है। (वैयक्तिक यथार्थ बोध / सामाजिक यथार्थ बोध)

   घ) प्रगतिवादी कवि ..... मानववादी हैं। (सर्वथा / विवेकपूर्वक)

   च) प्रगतिवादी कवि .....हैं। (यथार्थवादी / यथास्थितिवादी)

1.5 प्रगतिवाद का अभिव्यंजना शिल्प

1.5.1 रूप या शिल्प

प्रगतिवाद के संबंध में यह धारणा बहुत प्रचलित है कि इस धारा के कवि वस्तु या कथ्य को ही महत्व देते हैं, रूप या शिल्प को नहीं। पर सच्चाई यह है कि रूप या शिल्प का विकास उन्हीं कवियों के यहाँ दिखाई देता है जो वस्तु की तरह शिल्प या रूप की चिन्ता भी करते रहे हैं। नागार्जुन के यहाँ रूप की जो आश्चर्यजनक विविधता है वह किसी से छिपी नहीं। वे दोहा भी लिखेंगे तो पूरी शक्ति के साथ। गीत जैसे रूपप्रकार के भीतर भी उन्होंने दुर्लभ संगठन का प्रमाण दिया है। केदारनाथ अग्रवाल ने गीतों और सुगठित चित्रों में अपने काव्य विवेक का प्रमाण दिया है। त्रिलोचन ने अवधी में बरवै लिखे हैं। शमशेर गजलों के लिए प्रसिद्ध हैं। मुक्तिबोध ने लंबी कविता को जो महाकाव्योचित संगठन दिया वह रूप के प्रति असावधान रहकर संभव नहीं। प्रगतिवादी कवियों ने लोक काव्य रूपों का भी आश्रय लिया। आल्हा या लावनी जैसे रूपों को अपनाया। पर ध्यान रहे कि रूपगत परिष्कार प्रगतिवादी कवियों का लक्ष्य नहीं है न रूपप्रकारवाद जैसी बारीकी। प्रगतिवादी कवियों का बल उस रूप या शिल्प पर है जो कथ्य या विषयवस्तु के संप्रेषण के लिए धारदार साबित हो। केदारनाथ अग्रवाल की 'युग की गंगा' नागार्जुन की 'युगधारा', त्रिलोचन की 'धरती' आदि कविताओं में जो रूपगत प्रयोग हैं वे एक विशेष दृष्टि या विचारधारा या जीवनविवेक के अंतर्गत ही सार्थक बन पड़े हैं। त्रिलोचन ने 'जीवन का एक लघु प्रसंग' कविता एकदम गद्य के विन्यास में लिखी है। यह रूप की दृष्टि से विलक्षण प्रयोग है जिसकी नवीनता पर पहले किसी का ध्यान नहीं गया।

> तब मैं बहुत छोटा था, स्कूल जान का समय हो आया था
> मैंने कहा बुआ यह कैसे हो सकता है, वह दर्जा पास कर
> चुका हूँ मैं, अब नयी लेनी हैं किताबें पुरानी बेकार हैं।

प्रगतिशील कवियों ने साधारण रूप से असाधारण काम लिया है। निराला ने 'नये पत्ते' में जो रूप या शिल्प अपनाया था, प्रगतिवादियों ने उसका अनेक रूपों में अनेक स्तरों पर विकास किया है।

1.5.2 भाषा : काव्य भाषा (अलंकार, बिम्ब, प्रतीक)

प्रगतिवादी कवियों ने भाषा का आदर्श गुण माना है – संप्रेषणीयता। उनकी काव्य भाषा में भी अलंकार, बिम्ब, प्रतीक मिल जाएँगे पर अलंकरण बन कर नहीं, भाषा की सादगी, सरलता, क्षमता और जीवन शक्ति का प्रमाण बनकर। स्पष्टता, सहजता, प्रखरता, व्यंग्यविदग्धता, उग्रता, साहस, मूर्त्तता ये सभी प्रगतिवादी काव्यभाषा के गुण हैं। त्रिलोचन से शब्द लेकर कहें, प्रगतिवादी कवियों की भाषा सार्थक वहाँ है जहाँ वह 'जीवन की हलचल' से संपन्न है। यहाँ भाषा की ऐन्द्रिक क्षमता भी ध्यान आकृष्ट करती है, तद्भवता से मिली शक्ति या ऊर्जा भी –

मेंहदी की अरधान उड़ी। देखा, फिर ठहरा,
कपिश गहगहे विमल फूल खिलखिला रहे हैं
पिला रहे हैं
अमृत घ्राण को।

वर्षा सीकर भरी हवा, मेंहदी की मँह–मँह
जी करता है मैं अंजलि भर कर पी जाऊँ
वृक्ष लताएं पौधे तृण धरती पर डह–डह
करप रहे हैं। मेघ–नगर में ज्योत्सना टह–टह
उग आई अब। आँखें सहस कहाँ से लाऊँ।

(दिगंत / त्रिलोचन)

प्रगतिवादियों की भाषा में नये अप्रस्तुत मिल जाएंगे पर अलंकृति भर के लिए नहीं। यहाँ बिम्ब भी सीधे सादे अनलंकृत है। सजावट नहीं मूर्तता उनका गुण है। प्रगतिवादी कवियों के प्रतीक भी एक निश्चित विचारधारा या दृष्टि के अधीन ही सार्थकता प्राप्त करते हैं। मुक्तिबोध के जटिल प्रतीक उदाहरण हैं। जैसे 'ब्रह्मराक्षस'।

1.5.3 मूर्तिविधान : ऐतिहासिक मूर्त्तता

छायावादी कवियों ने भी भाषा की मूर्तिमत्ता पर बहुत बल दिया है पर छायावाद में यह गुण आगे चलकर विरल होता गया। प्रगतिवादियों ने इस पर यथार्थ दृष्टि के अनुसार ही विशेष बल दिया। प्रगतिवादी काव्यरूप में यह मूर्त्तता ऐतिहासिक चेतना के फलस्वरूप ही प्रकट हुई है। 'धरती का शक्तिपत्र' कविता में केदारनाथ अग्रवाल संघर्ष का एक मूर्त्त चित्रउपस्थित करते हैं। यहाँ अप्रस्तुत महत्वपूर्ण नहीं हैं उनके प्रयोग से संभव ऐतिहासिक मूर्तता महत्वपूर्ण है।

अभियुक्त क्रोध से पागल हो
कर चला जिरह उन लोगों से,
जैसे गयन्द चीरे कदली का वन का वन
जैसे जनता सामन्ती गढ़ को करे ध्वस्त
जैसे समद्र की बड़ी लहर
मारे छापा
छोटे जहाज को करे त्रस्त।

यहाँ पूरी स्थिति या वातावरण की मूर्तता उल्लेखनीय है।

1.5.4 छन्द–लय

रूप के अंतर्गत कई चीजें आती हैं छन्द–लय भी। छन्द या लय का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। छन्दों में प्रगतिवादियों ने खूब लिखा है। लोकछन्दों में भी और साहित्यिक महत्व के छन्दों में भी। दोहा, बरवै, गज़ल, आल्हा, लावनी से अलग भी लय का विन्यास प्रगतिवादी कविता में देखने योग्य है। कहीं तुकें लय के निर्वाह में सहायक हैं, कहीं वाक्यांशों के विलक्षण उतार–चढ़ाव। मुक्तिबोध की काव्य लय एक ही जान पड़ती है पर उसमें भी जहाँ–तहाँ भेद है और जहाँ एकरूपता है वहाँ भी कथ्य का दबाव नाटकीय गति या लय को प्रभावित करता है। नागार्जुन की कविता में आवृत्ति के नियम से जो लय बनती है उसका एक उदाहरण देखें –

चन्दू मैंने सपना देखा, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा
चन्दू मैंने सपना देखा, भभुआ से हूँ पटना लौटा
चन्दू मैंने सपना देखा, तुम्हें खोजते बद्री बाबू
चन्दू मैंने सपना देखा,खेल कूद में हो बेकाबू
चन्दू मैंने सपना देखा, कल परसों ही छूट रहे हो
चन्दू मैंने सपना देखा, खूब पतंगें लूट रहे हो
चन्दू मैंने सपना देखा, लाये हो तुम नया कैलेण्डर
चन्दू मैंने सपना देखा, तुम हो बाहर मैं हूँ अन्दर
चन्दू मैंने सपना देखा, इम्तिहान में बैठे हो तुम
चन्दू मैंने सपना देखा, पुलिस–यान में बैठे हो तुम।

प्रगतिवादी कवियों ने रूप–तिरस्कार नहीं किया, न छन्द लय के निर्वाह में निष्क्रिय या उदास न रहे हैं। नागार्जुन की कविता 'तीन दिन तीन रात' में लय का विन्यास भिन्न है –बातचीत की लय ही यहाँ आदर्श रूप में काव्य की लय है। प्रगतिवादी परंपरा का विकास जिन नये कवियों में है वे उन्हीं की तरह लय और छन्द के विविध रूपों के प्रति सजग हैं और उन्हें अपना रहे हैं।

बोध प्रश्न–3

1. कोष्ठकों में दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।
   क) रूपगत.....प्रगतिवादी कवियों का लक्ष्य नहीं है।
   (विकास / परिष्कार)
   ख) प्रगतिवादी काव्यभाषा का आदर्शगुण है .....(साधारणता / सम्प्रेषणीयता)
   ग) प्रगतिवादी काव्य रूप में मूर्तता .....चेतना का फल है।
   (वैयक्तिक / ऐतिहासिक)
   घ) प्रगतिवादी कवियों ने काव्य–लय को ..... दी है।
   (एकरसता / विविधता)

1.6 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि

1.6.1 नागार्जुन

प्रगतिवादी काव्यधारा के महत्वपूर्ण कवियों में प्रमख नागार्जुन के बारे में आज यह बात सहज ही कही जा सकती है कि समकालीन हिन्दी काव्य परिदृश्य में भी उन्हें केन्द्रीयता प्राप्त है। मैथिली काव्य रचनाओं के लिए साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित नागार्जुन खड़ी बोली हिन्दी कविताओं में भी मूल काव्य ऊर्जा, गहरी आंचलिकता, ठेठपन, तदभवता, व्यंग्यपूर्ण आक्रामकता और गहरी जीवनासक्ति का प्रमाण देते हैं। राजनीतिक कविताएं नागार्जुन के यहाँ बड़ी संख्या में हैं। उनमें जो सपाट तात्कालिक या इकहरी नहीं हैं, नागार्जुन की बड़ी कवि–प्रतिभा का प्रमाण देती हैं। कविता के लिए जो विषय अकल्पनीय या असंभव माने जाते हैं उनपर भी नागार्जुन ने कविताएँ लिखी हैं और असाधारण सफलता प्राप्त की है। जीवन के प्रति प्रगाढ़ राग की कविताएँ भी उनके यहाँ कम नहीं हैं। पर उनकी कविता का एक रंग वह है जहाँ नफरत, प्यार, विक्षोभ, जिज्ञासा घुलमिल जाते हैं – उनमें फर्क करना मुश्किल हो जाता है।

नागार्जुन का कविता की अंतर्वस्तु, रूप और भाषा पर अनोखा नियंत्रण दिखाई देता है। एक उदाहरण, उनकी समग्र काव्य क्षमता देखने के लिए प्रकृति से शुरू होकर एक दम सरल विन्यास वाली कविता कैसे राजनीतिक कविता हो जाती है, यह देखने के लिए शीर्षक है – ''काले काले'' –

काले काले ऋतु रंग
काली काली घन घटा
काले काले गिरि श्रृंग
काली काली छवि घटा
काले काले परिवेश
काली काली करतूत
काली काली करतूत
काले काले परिवेश
काली काली महँगाई
काले काले अध्यादेश।

वाक्य क्रम के बदलाव में एक संयुक्त पद ''काले काले'' की आवृत्ति में कला भी अपना काम कर रही है और वर्ग संघर्ष या व्यवस्था से संघर्ष का ऐतिहासिक विवेक भी। नागार्जुन को आधुनिक कबीर कहा गया है, वह उनके फक्कड़ क्रांतिकारी व्यक्तित्व को देखते हुए उनकी कला में भी यही व्यक्तित्व समाया है।

1.6.2 केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रतिनिधि तथा महत्वपूर्ण कवि हैं। रूमानी आदर्शवाद से यथार्थवाद तक, रूपासक्ति से जीवनासक्ति तक और कोमल रागात्मकता से खुरदुरे वस्तुचित्रण तक केदार की कविता के अनेक रंग हैं। भावुकता केदार के यहाँ आत्मीयता का पर्याय है। पत्नी प्रेम पर जैसी अकुण्ठ कविताएं केदारनाथ अग्रवाल ने लिखी हैं, किसी ने नहीं

लिखीं। प्रेम, सौन्दर्य प्रकृति के गहरे लगाव के साथ केदार संघर्षशील जनता के कठोर जीवन, कठिन श्रम और दृढ़ आस्था की ओर बराबर सजग रहे हैं। 'चन्द्रगहना से लौटती बेर' तथा 'बसंती हवा' से केदार की खास पहचान बनी। यह सहजता, यह स्वाभाविकता सच्ची जीवनासक्ति से ही पैदा होती है।

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है।

और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं।

केदारनाथ अग्रवाल स्वीकार करते हैं कि मार्क्सवादी विचारधारा के कारण ही उन्हें नयी जीवन दृष्टि और नयी काव्यदृष्टि मिली। 'देवली के नरसंहार' जैसी तात्कालिक घटनाओं पर भी केदार ने कविताएँ लिखी हैं और अपनी वर्ग चेतना का प्रमाण दिया है।

1.6.3 शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह को प्रगतिवादी काव्यधारा से सम्बद्ध करने में उन्हें कठिनाई होती है जो प्रगतिवाद को स्थिर मतवाद ही मानते हैं, उसकी काव्यात्मक संभावनाओं को महत्व नहीं देते। शमशेर को रूपवादी या प्रयोगशील मानकर अलग कर दिया जाता है। शमशेर विचारधारा की दृष्टि से मार्क्सवादी हैं और मार्क्सवाद को विशेष महत्व देते हैं। जनता के प्रति उनकी सहानभूति किसी से कम नहीं है। पर कविता को वे उसकी मुक्त संभावनाओं में देखते हैं। रूप और शिल्प उन्हें जीवन की प्रकट सच्चाइयों की तरह ही जरूरी जान पड़ते हैं। 'लेकर सीधा नारा' शमशेर की वह महत्वपूर्ण कविता है जो प्रगतिवादी आंदोलन के दौर में विशेष चर्चित हुई।

लेकर सीधा नारा
कौन पुकारा
अंतिम आशाओं की सन्ध्याओं से
मैं समाज तो नहीं, न मैं कुल
जीवन
कण समूह में हूँ मैं केवल
एक कण
कौन सहारा।

शमशेर मानते रहे हैं कि उनकी असली जमीन रोमानी ही थी पर 'अमन का राग', 'यह शाम है' जैसी कविताएँ वे अपनी आस्था के अनुरूप लिखते रहे हैं। सांप्रदायिक दंगों पर उन्होंने बाद में जो कविताएँ लिखी हैं वे प्रगतिशील विचारधारा, जीवन दृष्टि के बगैर असंभव है।

1.6.4 गजानन माधव मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की कविता का प्रगतिशील यथार्थवादी काव्यधारा से सहज संबंध बिठाने में डॉ. रामविलास शर्मा तक को कठिनाई होती है। अब शायद यह बात अधिक स्पष्टतापूर्वक कही जा रही है कि प्रगतिशील यथार्थवादी कविता की ही कम से कम दो परंपराएँ हैं –एक में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आते हैं, दूसरी में शमशेर, मुक्तिबोध। मुक्तिबोध ने सीधे–सीधे स्वीकार किया है कि एक कला सिद्धांत के पीछे विशेष जीवन दृष्टि होती है, उसके पीछे एक जीवन दर्शन होता है और उसके पीछे एक राजनैतिक दृष्टि भी होती है। मुक्तिबोध की महत्वपूर्ण लम्बी कविताएँ राजनैतिक दृष्टि से वंचित नहीं हैं। यह राजनीतिक दृष्टि मार्क्सवाद ही है जो व्यापक अर्थ में विश्वदृष्टि भी है। 'अन्तःकरण का आयतन' कविता में मुक्तिबोध अपना पक्ष स्पष्ट करते हैं–

पृथ्वी के प्रसारों पर
जहाँ भी स्नेह या संगर
वहाँ पर एक मेरी छटपटाहट है
वहाँ है जोर गहरा एक मेरा भी
सतत मेरी उपस्थिति
नित्य सन्निधि है।

मुक्तिबोध ने यथार्थ चित्रण के लिए फैन्टेसी का भी उपयोग किया और इस प्रकार एकरस जान पड़ने वाले काव्यरूप में विविधता, नाटकीयता, गति पैदा की। अँधेरी दुनिया के रहस्यों को भेदते हुए मुक्तिबोध के जो विचार स्फुलिंग सामने आते हैं वे एक निश्चित विचारधारा या जीवन दृष्टि का प्रमाण देते हैं। वे सत्ता को किस तरह बेनकाब करते हैं इसका सटीक उदाहरण है 'भूलगलती' नाम कविता – जिसमें भूलगलती सिंहासन पर बैठी है और 'सच' नाम का पात्र गिरफ्तार करके लाया जाता है। 'अँधेरे में' मुक्तिबोध की सबसे महत्वपूर्ण कविता है – आधुनिक कविता की विशिष्ट उपलब्धियों में एक।

1.6.5 त्रिलोचन

त्रिलोचन की एक अलग पहचान है। परम्परा में ही उन्हें रखना हो तो वे तुलसी और निराला की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कवि हैं। उन्होंने राजनीतिक विषयों पर कविताएं नहीं लिखी हैं कि उनकी विचारधारा तक सीधे पहुंचना आसान हो। पर साधारण विषयों पर, जीवन के बहुत मामूली प्रसंगों पर लिखते हुए भी वे अपनी दृष्टि का प्रमाण देते हैं। सानेट त्रिलोचन का अपना आविष्कार है। सानेटों में जितनी सहजता से वे आत्मकथा या सामाजिक संदेश बिखेरते चलते हैं, उसी से उनकी साफ दृष्टि और असाधारण काव्यक्षमता का पता चलता है। त्रिलोचन की कविताएँ सीधे जीवन को पकड़ती हैं।

त्रिलोचन के सानेटों में आत्मभर्त्सना के जो अंकुठ संकेत हैं उनसे उनकी जीवनशक्ति प्रकट होती है। ''भीख मांगते उसी त्रिलोचन को देखा कल/जिसको समझे था है तो है यह फौलादी'', 'नगई महरा' जैसे इतिवृत्त में उनका ढंग दूसरा है – बतकही वाला ढंग। कृत्रिमता, बनावटीपन से मुक्त यह सहज आत्मीयता त्रिलोचन का काव्यवैशिष्ट्य है–

शब्दकार इन शब्दों में जीवन होता है

ये भी चलते फिरते और बात करते हैं।

बोध प्रश्न–4

1. कोष्ठकों में दिए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।
   क) जीवन के प्रति प्रगाढ़.....की कविताएँ नागार्जुन के यहाँ कम नहीं हैं।
   (भाव/राग)
   ख) भावुकता केदार के यहाँ .....का पर्याय है।
   (सरलता/आत्मीयता)
   ग) शमशेर विचारधारा की दृष्टि से .....है।
   (भाववादी/मार्क्सवादी)
   घ) मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ .....दृष्टि से वंचित नहीं हैं।
   (सांस्कृतिक/राजनीतिक)
   च) त्रिलोचन का अपना आविष्कार है..... ।(प्रगीत/सानेट)

1.7 प्रगतिवाद का महत्व

ऐतिहासिक महत्व

प्रगतिवादी का एक काव्य प्रवृत्ति के रूप में और व्यापक साहित्यिक आंदोलन के रूप में ऐतिहासिक महत्व है। जिस समय अतिशय सूक्ष्मता और अति–कल्पनाशीलता के नाम पर हिन्दी कविता गूढ़ रहस्योन्मुख होती जा रही थी, प्रगतिवाद ने कविता को अपने समय के यथार्थ से, यथार्थ–बोध के अनेक रूपों से जोड़ा और कविता और राजनीति के बीच ऐसा घनिष्ठ संबंध विकसित किया जिससे आगे की कविता भी लाभान्वित हुई। प्रगतिवाद ने कविता संबंधी अवधारणा बदली और अपने समय के तीखे सवालों की गूंज कविता में पैदा की। प्रगतिवाद ने एक नये ही संदर्भ में 'कविता किसके लिए'– जैसा सवाल उठाया। प्रगतिवाद अपनी ऐतिहासिक भूमिका के लिए साहित्य में स्थायी महत्व का विषय हो गया है।

साहित्यिक महत्व

प्रगतिवादी कविता उदाहरण है कि उसने साहित्य भूमि का विस्तार किया। कविता का संसार अधिक यथार्थ, प्रामाणिक, व्यापक और विश्वसनीय लगने लगा। कविता की अंतर्वस्तु और रचनाविधान में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। उपेक्षित जान पड़ने वाले विषयों, चरित्रों को काव्यात्मक प्रतिष्ठा मिली। कविता ने प्रत्यक्ष जीवन, लोकरूपों, लोक प्रचलित छन्दों का नया उपयोग किया और नयी संभावनाएँ खोजी।

बोध प्रश्न– 5

1 कोष्ठकों में दिये शब्दों से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।

क) प्रगतिवाद की ऐतिहासिक.....है। (भूमिका)

ख) प्रगतिवाद ने .....का विस्तार किया।(साहित्य बोध/साहित्य भूमि)

1.8 सारांश

'प्रगतिवाद' केवल काव्य प्रवृत्ति नहीं, व्यापक काव्यान्दोलन या साहित्यिक आंदोलन है। उसके पीछे मार्क्सवादी विचारधारा है जो राजनीतिक दृष्टि से आगे विश्वदृष्टि के रूप में भी महत्वपूर्ण है। प्रगतिवाद या प्रगतिशील साहित्य शब्द का प्रयोग 1936 के आसपास हुआ जब प्रगतिशील लेखक संघ स्थापित हो चुका था पर साहित्य में 1930 के बाद ही यह रूझान प्रकट होने लगा था जिसके पीछे बदली हुई राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकता थी। प्रगतिवाद एक अर्थ में छायावाद का विकास है दूसरे अर्थ में छायावाद के विरुद्ध विकसित काव्यप्रवृत्ति। अन्तर्वस्तु की दृष्टि से प्रगतिवाद में ऐतिहासिक चेतना सामाजिक यथार्थ दृष्टि, परिवेश या प्रकृति के प्रति लगाव, जीवन के प्रति स्वीकृति का भाव, मानवीय संबंधों में समानता का आग्रह और भविष्योन्मुखी दृष्टि का महत्व है। रचनाविधान की दृष्टि से प्रगतिवाद में यथार्थबोध के अनुरूप नये रूपों की खोज, जीवन की हलचल से भरी भाषा, यथार्थ ज्ञान से प्रेरित ऐतिहासिक मूर्त्तता, लोकरूपों या छन्दों का आवश्यकतानुसार उपयोग, सहजता का शिल्प आदि महत्वपूर्ण हैं। प्रगतिवाद प्रयोगवाद या अन्य आधुनिकतावादी प्रवृत्ति के उभार के कारण कभी बीच में केन्द्र में न रह गया हो किंतु विकास उसका कभी स्थगित नहीं हुआ। यही कारण है कि आज भी जो नयी कविता लिखी जा रही है उसे प्रगतिवाद का ही विकास कहा जाएगा। प्रगतिवाद के प्रमुख कवि हैं : नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, मुक्तिबोध और त्रिलोचन। बाद के कवियों में केदारनाथ सिंह, धूमिल, कुमार विकल, अरुण कमल के नाम लिये जा सकते हैं। यों, ऐसे नामों की सूची बड़ी हो सकती है क्योंकि यह प्रवृत्ति आज पुनः केन्द्रीयता प्राप्त कर चुकी है।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त (तीन वाक्य) उत्तर लिखिए :

   क) प्रगतिवाद की किस व्यापक आंदोलन से तुलना की गयी है?

   .....

   .....

   .....

   ख) किस अर्थ में प्रगतिवाद का चरित्र अखिल भारतीय है?

   .....

   .....

   .....

   ग) निराला ने कविता की मुक्ति की व्याख्या किस प्रकार की है?

   .....

   .....

   .....

घ) निम्नलिखित काव्यांश की विशेषताएँ इस दृष्टि से स्पष्ट कीजिए कि प्रगतिवाद का स्वरूप सामने आ सके।

जलीठूंठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

1.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. ख)
2. ख)
3. प्रगतिवाद से अभिप्राय उस साहित्यिक प्रवृत्ति से है जिसमें एक प्रकार की इतिहासचेतना, सामाजिक इतिहासदृष्टि, वर्गचेतन विचारधारा, प्रतिबद्धता या पक्षधरता, गहरी जीवनासक्ति, परिवर्तन के लिए सजगता और एक प्रकार की भविष्योन्मुखी दृष्टि मौजूद हो।

बोध प्रश्न –2

1. क) ऐतिहासिक ख) वर्ग चेतना प्रधान ग) सामाजिक यथार्थ बोध घ) विवेकपूर्वक च) यथार्थवादी
2. अपने समय का विवेक और अपने समय या युग की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकता का बोध होना ही ऐतिहासिक चेतना है।

बोध प्रश्न –3

1. क) परिष्कार ख) सम्प्रेषणीयता ग) ऐतिहासिक घ) विविधता

बोध प्रश्न –4

1. क) राग ख) आत्मीयता ग) मार्क्सवादी घ) राजनीतिक च) सानेट

बोध प्रश्न –5

1. क) भूमिका ख) साहित्यभूमि

अभ्यास

1. क) प्रगतिवाद केवल काव्य प्रवृत्ति नहीं, व्यापक साहित्यिक आंदोलन है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उसकी व्यापकता पर विशेष बल दिया है। उन्होंने व्यापकता की दृष्टि से प्रगतिवाद को केवल भक्ति आंदोलन से तुलनीय बताया है।

   ख) प्रगतिवाद का चरित्र एक विशेष अर्थ में अखिल भारतीय है। उसको अभिव्यक्ति हिन्दी के साथ बँगला, मराठी, पंजाबी, मलयालम, कश्मीरी, उर्दू आदि अनेक भाषाओं में मिली।

ग) निराला ने कहा है कि कविता की मुक्ति मनुष्यों की मुक्ति के ही समकक्ष है। वे मुक्त छंद का महत्व बता रहे थे। इसी संदर्भ में कविता की मुक्ति का प्रश्न उठाया गया।

घ) जलीठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक
बाल न बांका कर सकी शासन की बंदूक

नागार्जुन ने दोहा छन्द में यह कविता लिखी है – 'शासन की बन्दूक'। यहाँ सत्ता या व्यवस्था के बर्बर दमन चक्र की ओर संकेत है। 'जली ढूंठ पर' संकेत है उस गोली कांड का, जो हो चुका है। संघर्ष थमने वाला नहीं है। कोयल जलीठूँठ पर बैठ जो कूक जाती है, मानो दमनकारी शक्तियों की धज्जियां उड़ा जाती है। शासन की बन्दूक बाल बांका नहीं कर पाती। प्रगतिवादी कविता में संघर्ष का ही पक्ष लिया जाता है। यहां भी सब कुछ सीधे नहीं कहा जाता। संकेत, बिम्ब प्रतीक की सहायता से भी कहा जाता है पर संकेत भी इतने स्वाभाविक सहज होते हैं कि अलग से उनकी ओर ध्यान नहीं जाता। ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक यथार्थदृष्टि के बल पर ही इतना सार्थक सटीक काव्यचित्र संभव हो पाता है।

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रगतिवादः विजय शंकर मल्ल
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँः नामवर सिंह
प्रगतिवादः रेखा अवस्थी
मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्यः राम विलास शर्मा
इतिहास और आलोचनाः नामवर सिंह
शब्द और मनुष्यः परमानंद श्रीवास्तव

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 प्रयोगवाद और नयी कविता : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्‌देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि
2.3 प्रयोगवाद का स्वरूप
2.4 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
    2.4.1 विचारधारा से मुक्ति
    2.4.2 सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण
    2.4.3 व्यक्तिवाद
    2.4.4 यथार्थ–दृष्टि
2.5 प्रयोगवाद का शिल्प–विधान
    2.5.1 काव्य–भाषा
    2.5.2 छंद और लय
    2.5.3प्रतीक और बिंब
2.6 प्रयोगवादी काव्य का विकास
2.7 नयी कविता की पृष्ठभूमि
2.8 नयी कविता का अर्थ
2.9 नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
    2.9.1 व्यक्ति स्वातंत्र्य
    2.9.2 आस्था और अनास्था
    2.9.3 औद्योगिक सभ्यता
    2.9.4 अनुभूतिपरकता
    2.9.5 प्रकृति प्रेम
2.10 नयी कविता का शिल्प विधान
    2.10.1 काव्य–भाषा
    2.10.2 छंद और लय
    2.10.3 प्रतीक और बिंब
2.11 नयी कविता का विकास
2.12 सारांश
2.13 शब्दावली
2.14 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
2.15 उपयोगी पुस्तकें

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में आधुनिक हिंदी काव्य से संबंधित दो प्रमुख काव्यधाराओं प्रयोगवाद और नयी कविता का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रयोगवाद और नयी कविता के उद्भव की पृष्ठभूमि बता सकेंगी/सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता के स्वरूप का विवेचन कर सकेंगी/सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कर सकेंगी/सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता की भाषा और शिल्प पक्ष की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगी/सकेंगे; और
- प्रयोगवाद और नयी कविता के विकास का वर्णन कर सकेंगी/सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी काव्य परंपरा में प्रयोगवाद और नयी कविता का परिचय आप इस इकाई में प्राप्त करेंगे। आधुनिक हिंदी काव्य के विकास में इन दोनों धाराओं का महत्व यह हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थितियों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति इन्हीं के माध्यम से हुई है। हम इस पाठ्यक्रम में इन धाराओं के कुछ प्रमुख कवियों के काव्य का अध्ययन करेंगे। इनके काव्य को समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप इन धाराओं की काव्यगत विशेषताओं से भली–भांति परिचित हों।

प्रयोगवाद का आरंभ कब और क्यों हुआ? यह काव्यधारा अपने पूर्व की काव्यधाराओं से किन अर्थों में भिन्न थी। वस्तु और रूप दोनों दृष्टियों से इस काव्य की क्या विशिष्टताएँ है इन सभी बातों का अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। हम आपको यह भी बतायेंगे कि इस काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन–कौन हैं और उनका क्या योगदान है? प्रयोगवाद के बाद हिंदी में 'नयी कविता' नामक काव्यधारा का उदय हआ। प्रयोगवाद और नयी कविता के अंतःसंबंधों की चर्चा करते हुए हम उपर्युक्त सभी पहलुओं की चर्चा नयी कविता के संदर्भ में भी करेंगे।

आशा है इस इकाई को ध्यान से पढ़ने के बाद नयी कविता तक के हिंदी काव्य के विकास की एक पूर्ण तस्वीर आपके सामने आ चुकी होगी। भारतेन्दु युग से लेकर समकालीन कविता तक का विकास इस बात का द्योतक है कि इस अवधि में हिंदी कविता में तेजी से बदलाव आये हैं। अंतर्वस्तु, रूप, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से हिंदी कविता लगातार बदलती और विकसित होती रही है। यह विकास इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके माध्यम से तत्कालीन स्थितियों में आये परिवर्तनों को समझा जा सकता है क्योंकि हिंदी कविता उन्हीं स्थितियों के बदलाव को ही किसी–न–किसी रूप में व्यक्त करती रही है। प्रयोगवाद और नयी कविता के अध्ययन से आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि तत्कालीन स्थितियों का कवियों पर किस रूप में प्रभाव पड़ रहा था और वे अपनी भावनाओं को कैसे व्यक्त कर रहे थे।

2.2 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

हिंदी के प्रख्यात कवि अज्ञेय के संपादन में 'तार सप्तक' नाम का एक काव्य–संग्रह सन् 1943 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सात कवियों की कविताएँ संग्रहीत थीं : गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, रामविलास शर्मा और स्वयं अज्ञेय। जब यह संग्रह प्रकाशित हुआ था, तब इनमें अज्ञेय को छोड़कर शेष सभी कवि प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित थे, कुछ तो सीधे–सीधे अपने को कम्युनिस्ट कहते थे। अज्ञेय भी प्रगतिवादियों से बहुत दूर नहीं थे। इसके बावजूद इस संग्रह में काव्य में प्रयोग की चर्चा आरंभ हुई। इसका कारण था – इस पुस्तक की अज्ञेय द्वारा लिखित 'भूमिका'।

अज्ञेय ने 'तार सप्तक' की भूमिका में लिखा था कि 'संग्रहीत कवि सभी कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं – जो यह दावा नहीं करते कि उन्होंने काव्य सत्य पर लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को पाते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है, अभी राही हैं, राही नहीं राहों के अन्वेषी।' अज्ञेय के इन कथनों से 'प्रयोगवाद' और प्रयोगशीलता की चर्चा होने लगी। 'दूसरा सप्तक' में अज्ञेय द्वारा यह कहे जाने के बावजूद कि प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप इष्ट या साध्य है। प्रयोगवाद शब्द रूढ़ हो गया। इस प्रकार एक धारणा यह बनी कि प्रयोगवाद का आरंभ 'तार सप्तक' से हुआ।

सन् 1947 में अज्ञेय के संपादन में 'प्रतीक' नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ तथा इस पत्रिका में प्रकाशित होने वाली कविताओं को प्रयोगवादी कहा जाने लगा। इसके बाद से लगातार प्रयोगवाद की चर्चा होती रही, यद्यपि अज्ञेय ने दूसरा सप्तक (1951) की भूमिका में प्रयोग के वाद से इन्कार किया, इसके बावजूद यह शब्द रूढ़ हो गया। इस प्रकार प्रयोगवाद का आरंभ 'तार सप्तक' (1943) से नहीं बल्कि 'प्रतीक' (1947) के प्रकाशन से माना जा सकता है, यह मत भी रखा गया। वैसे भी 1946–1947 से पहले तक प्रगतिशील और गैर–प्रगतिशील कवियों के बीच वैसी खाई नहीं थी, जैसी बाद में देखी गयी। 1946–47 के बाद ही प्रगतिशील कवियों–लेखकों और गैर प्रगतिशील कवियों–लेखकों के बीच मतभेद बढ़ा और प्रयोगवाद, प्रगतिवाद के विपरीत रूप पक्ष पर बल देता हुआ आगे बढ़ा।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का अंतःसंबंध

'प्रतीक' (1947) के प्रकाशन के समय प्रगतिशील कहे जाने वाले कई कवियों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन होने लगा था। नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, नरेन्द्र शर्मा, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर आदि कुछ ऐसे ही प्रगतिशील कवि थे। इन कवियों ने इस प्रक्रिया में प्रगतिवाद पर दो आरोप लगाये – एक तो यह है कि प्रगतिवाद साहित्य का संकीर्णतावादी आंदोलन है जो लेखकों की स्वतंत्रता का अपहरण कर उसे खास विचारधारा के घेरे में बांध देता है। दूसरा आरोप यह लगाया गया कि प्रगतिवाद साहित्य के रूप व कला पक्ष की उपेक्षा करता है तथा विषय–वस्तु के संबंध में भी संकीर्ण दृष्टिकोण रखता है। अज्ञेय प्रगतिवाद की सामूहिकता के विरुद्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक बनकर आगे आये। अतः जब 'प्रतीक' का प्रकाशन आरंभ हुआ तो वे सभी पुराने प्रगतिशील कवि जो प्रगतिवाद से असंतुष्ट थे तथा वे नये कवि जो अभी अपनी दिशा निर्धारित नहीं कर पाये, अज्ञेय और 'प्रतीक' के इर्द–गिर्द इकट्ठे होने लगे। इस प्रकार अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक बन कर उभरे।

अज्ञेय ने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के अंतर को स्पष्ट किया है। अज्ञेय के अनुसार मानव के प्रति दो दृष्टिकोण मिलते हैं। एक में मानव–व्यक्ति पर आग्रह है अर्थात् व्यक्ति के रूप में मनुष्य केन्द्र में है, दूसरे में मानव सामाजिक इकाई के रूप में है। पहले में विषय के प्रति आग्रह है, साथ ही सौन्दर्य और रूप–विधान के प्रतिमानों को अस्वीकार करते हुए चलती है। जबकि दूसरे का आग्रह विषय पर नहीं विषय की स्थिति पर है और वह रूप–विधान की परवाह नहीं करता। अज्ञेय के कथन का तात्पर्य यह है कि प्रगतिवाद में विषय के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण रहता है और कला–पक्ष की उपेक्षा रहती है जबकि प्रयोगवाद में रचना का कलात्मक उद्देश्य कभी संदिग्ध नहीं रहता।

वस्तुतः प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ से साहित्य को संयुक्त करते हुए उसे संघर्ष का माध्यम बनाता है जबकि प्रयोगवाद साहित्य के रूप–संबंधी नवीन प्रयोगों पर बल देता है तथा साहित्य के सामाजिक पक्ष की उपेक्षा करता है। प्रगतिशील आदोलन और साहित्य का संबंध राष्ट्रीय स्वाधीनता से घनिष्ठ रूप से जड़ा था। जबकि प्रगतिवाद शुद्ध रूप से एक साहित्यिक काव्य आंदोलन था। उसकी प्रतिबद्धता किसी विशेष विचारधारा से नहीं थी और काव्य के कलापक्ष के प्रति उसमें आग्रह अधिक था।

प्रयोगवादकालीन परिस्थितियाँ

साहित्य में प्रयोगवाद की प्रवृत्ति के उदय के क्या कारण है? प्रगतिवाद का आंदोलन राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष से घनिष्ठ रूप से जुड़ा था, लेकिन जब आजादी हासिल हो गयी तो मध्यवर्ग के सम्मुख कोई ऐसा आदर्श नहीं रहा जो उन्हें किसी बाह्य सामाजिक आदर्श से जोड़ पाता। देश के नव निर्माण ने उनमें नवीन आकांक्षाओं को जगाया। सामूहिकता की भावना के शिथिल पड़ने के साथ व्यक्तिवाद ने जोर पकड़ना शुरू किया। दूसरी ओर विश्व पैमाने पर अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी शिविर और सोवियत संघ के नेतृत्व में समाजवादी शिविर के बीच बढ़ते तनाव ने भी लेखकों के एक बड़े हिस्से को प्रभावित किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवादी देशों ने कम्युनिस्ट देशों और मार्क्सवादी विचारधारा के विरुद्ध प्रचार किया। इस प्रचार ने लेखकों और बुद्धिजीवियों को भी प्रभावित किया। इस बात को प्रमुखता दी जाने लगी कि व्यक्ति की स्वतंत्रता ही सर्वोत्तम मूल्य है। साम्यवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण करता है। समाजवादी देशों में व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। वहाँ लोकतंत्र और मानव मूल्य सुरक्षित नहीं है। प्रयोगवाद के उदय में इन परिस्थितियों नें भी अपनी भूमिका निभाई। प्रयोगवाद के उदय का एक कारण यह भी था कि प्रगतिवादी आंदोलन में धीरे–धीरे संकीर्णतावादी दृ ष्टिकोण का प्रवेश होने लगा। जीवन के व्यापक अनुभवों की बजाए कुछ खास तरह के जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाने लगा। कलात्मक श्रेष्ठता की बजाए प्रचार को अधिक प्रश्रय दिया गया। इस स्थिति ने नये कवियों–लेखकों में असंतोष उत्पन्न किया। उन्होंने नये मार्ग की तलाश आरंभ की। प्रयोगवाद इसी नये सोच का वाहक बनकर प्रवर्तित हुआ।

2.3 प्रयोगवाद का स्वरूप

'तार सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने काव्य को प्रयोग का विषय माना था। उनके इस कथन से ही काव्य में प्रयोग को लेकर चर्चा बढ़ने लगी और धीरे–धीरे प्रगतिवादी काव्य से भिन्न

कविताओं को प्रयोगवादी कविता कहा जाने लगा। लेकिन इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म मानते हैं। काव्य के कला पक्ष और रूप पक्ष पर बल देते हुए भी प्रयोगवाद सिर्फ काव्य का कलावादी आंदोलन नहीं है बल्कि इससे अधिक यह कला के क्षेत्र में नये विचारों और मतों का वाहक भी है। अज्ञेय ने कहा था, 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं, रहे, नहीं हैं।' अज्ञेय के इस कथन में केवल प्रयोग को वाद मानने से ही इंकार नहीं है बल्कि किसी विचारधारा विशेष के प्रति प्रतिबद्धता को भी वे अनावश्यक मानते हैं। अज्ञेय का मानना है कि काव्य में किसी विचारधारा के प्रति आग्रह से व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है। धर्मवीर भारती, रघुवंश, विजयदेव नारायण साही आदि कवियों, समीक्षकों की दृष्टि में भी 'प्रयोगशील कविता कई अर्थों में टेकनीक और अभिव्यंजना का आंदोलन है।'

अज्ञेय यह मानते हैं कि प्रयोग दोहरा साधन है। 'एक तो उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।' अज्ञेय एवं अन्य लेखकों के उपर्युक्त कथनों से हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

क) प्रयोगवाद में विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता का आग्रह नहीं है।
ख) प्रयोगवाद में विषयवस्तु की अपेक्षा रूप और शिल्प को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।
ग) प्रयोग का संबंध नयी विषय–वस्तु की खोज से भी है और उस विषय–वस्तु को प्रेषित करने के ढंग से भी है।

अगर हम उपर्युक्त बातों पर गौर करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि प्रयोगवाद काव्य में नये दृष्टिकोण को लेकर सामने आया जो पूर्ववर्ती काव्यधारा प्रगतिवाद से भिन्न था।

2.4 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ इसलिए यह स्वाभाविक था कि प्रयोगवाद समाज की तुलना में व्यक्ति को, विचारधारा की तुलना में अनुभव को, विषयवस्तु की तुलना में कलात्मकता को श्रेयस्कर मानता। प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए हमें उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखना चाहिए। प्रयोगवाद के स्वरूप को समझने के लिए हम उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

2.4.1 विचारधारा से मुक्ति

आलोचक डॉ. नामवर सिंह 'वाद विरूद्ध विद्रोह' को प्रयोगवाद की सर्वप्रथम विशेषता माना है। स्वयं अज्ञेय ने कहा था 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है।' प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कोई भी वाद या विचारधारा मनुष्य को सत्य तक नहीं पहुंचा सकती है। राजनीतिक पक्षधरता को वे अनावश्यक मानते हैं। अज्ञेय के अनुसार 'हमारा जन्मलेना ही पक्षधर होना है।' जीवन संघर्ष में वह किसी बाह्य सत्य, किसी वैज्ञानिक दर्शन की उपयोगिता को स्वीकार नहा करते।

उनका प्रश्न है कि जिस विचार दर्शन के सहारे हम जीवन–पथ पर चलने का निर्णय करते हैं वह कब तक हमें सहारा देगा। उसका कितना भरोसा किया जा सकता है –

यह जो दिया लिये तुम – चले खोजने सत्य, बताओ
क्या प्रबंध कर चले
कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
वही जलेगी सदा
अकम्पित, उज्ज्वल, एकरूप, निर्धूम?

(साधना का सत्य, कितनी नावों में कितनी बार)

2.4.2 सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण

डॉ. नामवर सिंह ने 'सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण' को प्रयोगवाद की दूसरी विशेषता माना है। जब एकबार प्रयोगवादी कवि ने विचारधारा से अपने को अलग कर लिया तब सत्य को जानने के लिए निरंतर अन्वेषण आवश्यक हो गया। अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में कहा था, 'प्रयोग दोहरा साधन है. क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है. दूसरे उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है।अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।'

अज्ञेय के विचारों का तात्पर्य यह है कि प्रयोगवाद कवि उस सत्य की भी खोज करता है, जिसे वह काव्य में व्यक्त करना चाहता है और उस माध्यम की भी खोज करता है जिसके द्वारा सत्य व्यक्त होता है। इस प्रकार सत्य का अन्वेषण प्रयोगवाद की एक प्रमुख विशेषता है। प्रयोगशीलता की पहचान इसी प्रवृत्ति में अंतर्निहित है।

2.4.3 व्यक्तिवाद

प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति के एकांत महत्व पर विशेष बल दिया है। 'नदी के द्वीप' कविता में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के संबंधों पर विचार किया है। उनके अनुसार व्यक्ति द्वीप के समान है जो काल रूपी नदी के बीच दृढ़ता से अवस्थित रहता है जो समाज रूपी भूखंड की तरह नदी को गंदला नहीं करता। 'नदी के द्वीप' कविता में व्यक्ति और समाज अलग–अलग है। उनकी अन्य कई कविताओं में भी व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व पर बल दिया गया है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति यह आग्रह मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है जो वैयक्तिक असंतोष से उपजी है। छायावाद में भी मध्यवर्ग का ही व्यक्ति केन्द्र में था परन्तु वहाँ उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी थी, वह आत्म–विकास की ओर अग्रसर था, उसकी व्यक्ति–चेतना सामंती रूढ़ियों और बंधनों से मुक्त होना चाहती थी। प्रगतिवाद ने इस मध्य वर्ग के व्यक्ति को समाज से और सामूहिक चेतना से जोड़ा। इसके कारण मध्यवर्ग के व्यक्ति में व्यक्तिवादिता का उदय नहीं हआ। परंतु प्रयोगवादी दौर में मध्यवर्ग का असंतोष सामाजिक धरातल पर व्यक्त होने की बजाए वैयक्तिक धरातल पर व्यक्त हआ। समाज से कटा हुआ व्यक्ति केवल अपने दर्द को व्यक्त करने लगा। आशा और विश्वास की जगह निराशा और अनास्था ने ले ली। इस प्रकार प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति की भावनाएं ही प्रमुख होती चली गयीं।

2.4.4 यथार्थ–दृष्टि

प्रयोगवादी कविता में भावुकता की बजाए बौद्धिकता का आग्रह अधिक है। जीवन के यथार्थ को रंगीन मोहक और भावमय रूप में प्रस्तुत करने की बजाए प्रयोगवाद ने उसे सहज और साधारण रूप में प्रस्तुत किया। यद्यपि प्रयोगवादी कवि की जीवनानुभूति बहुत सीमित थी, परन्तु यह सीमित अनुभव यथार्थपरक रूप से ही व्यक्त हुआ है। इसका उदाहरण हम प्रकृति और नारी संबंधी कविताओं में देख सकते हैं।

छायावादी और प्रयोगवादी कविता में नारी–चित्रण की तुलना करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि 'छायावादी कवि प्रायः प्रकृति की मोहक पृष्ठभूमि में अथवा सुंदर प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से नारी की छाया–प्रतिमा निर्मित करते रहे, लेकिन प्रयोगवादी कवि ने यहाँ भी अप्सरामयी नारी को स्वप्न स्थित गरिमामय पद से उबारते हुए सामान्य भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया।' अज्ञेय आधुनिक युग के साधारण व्यक्ति को यौन–वर्जनाओं का पुंज मानते हैं। शायद यही कारण है कि प्रयोगवाद में प्रेम की अभिव्यक्ति कहीं–कहीं प्रकृतिवाद के धरातल पर हुई है। यह अवश्य है कि प्रयोगवादी कविताओं में प्रेम भावुकतापूर्ण और लिजलिजे रूप में व्यक्त नहीं हुआ है बल्कि बौद्धिक धरातल पर व्यक्त हुआ है। उदाहरण के लिए 'हरी घास पर क्षण भर' कविता में अज्ञेय प्रेमाभिव्यक्ति करते हुए सामाजिक वास्तवकिता को नहीं भूलते। प्रेम की भावना का एक आयाम यह भी है कि व्यक्ति प्रेम में डूबकर दुनिया की सुघबुध खोने की बजाय वह समाज के प्रति उदात्त और जीवन के प्रति अधिक संघर्षशील बने। गिरिजाकुमार माथुर की 'तैतींसवी वर्षगाँठ'में यही भावना व्यक्त हुई है। कवि कहता है कि उम्र की उस मीनार पर केवल प्रिय का प्यार ही शक्ति देता है जिससे कि संसार के जुल्म से लड़ा जा सके। कवि अपनी प्रिया से कामना करता है –

लाल आंचल से पसीना पोंछ दो
बाल पतली उंगलियों से ओंछ दो
उम्र की सारी थकान उतार दो
देह पर हथियार नये संवार दो।

प्रयोगवादी कवियों ने प्रकृति–चित्रण में भी इसी यथार्थ–दृष्टि का परिचय दिया है। प्रकृति की सूक्ष्म गतिविधियों के उसके रूप, रस, स्पर्श, गंध और स्वर के अनुभवों को शब्दबद्ध करने की कोशिश करते हैं। अज्ञेय, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर आदि की कविताओं में हम प्रकृति के विभिन्न रूप देख सकते हैं –

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे,
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
अभी गीला पड़ा है
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गयी हो
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक

मल दी हो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।
और.....
जादू टूटता है इस उषा का अब –
सूर्योदय हो रहा है।

(उषा : शमशेर)

बोध प्रश्न –1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1. प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में कुछ अंतर नीचे बताये गये हैं। इनमें जो अंतर सही नहीं हो उनके आगे (x)का चिह्न लगाइए।

   क) प्रगतिवाद में समाज केंद्र में होता है जबकि प्रयोगवाद में व्यक्ति। ( )
   ख) प्रगतिवाद में कला पक्ष का अधिक महत्व होता है जबकि प्रयोगवाद में विषय–वस्तु का। ( )
   ग) प्रगतिवाद में व्यक्ति की समस्याओं की प्रधानता होती है जबकि प्रयोगवाद में व्यक्ति की समस्याओं का चित्रण नहीं होता। ( )
   घ) प्रगतिशील आंदोलन का संबंध स्वाधीनता संघर्ष से था जबकि प्रयोगवाद केवल साहित्यिक, आंदोलन रहा। ( )

2. निम्नलिखित विशेषताओं में से जो प्रयोगवाद पर लागू न हो, उनके आगे (x)का चिन्ह लगाइए।
   क) प्रयोगवाद मार्क्सवाद के प्रति पक्षधरता का समर्थक है। ( )
   ख) प्रयोगवाद में 'वाद' का आग्रह नहीं है। ( )
   ग) प्रयोगवाद की कविता में शिल्प पक्ष पर विशेष ध्यान रखा जाता ( )
   घ) प्रयोगवाद में सत्य की सतत खोज पर अधिक बल दिया जाता है। ( )

3. प्रयोगवाद में व्यक्ति के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए। उत्तर लगभग पाँच पँक्तियों में लिखिए।

   .....
   .....
   .....

अभ्यास

1. प्रयोगवादी कविता का जन्म किन परिस्थितियों में हुआ और ये परिस्थितियाँ पूर्व से किन रूपों से भिन्न थीं? लगभग 100 शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

2.5 प्रयोगवाद का शिल्प–विधान

प्रयोगवाद में वस्तु–पक्ष की अपेक्षा रूप–पक्ष पर अधिक बल दिया गया है, यह पहले कहा जा चुका है। अज्ञेय ने भी कहा था कि प्रयोगवादी कविता में सौन्दर्य–पक्ष और रूप–विधान उत्कृष्ट होता है। किंतु हम यह भी बता चुके हैं कि प्रयोगवाद केवल कलापक्ष पर ही जोर नहीं देता बल्कि अंतर्वस्तु की दृष्टि से भी वह पहले की कविताओं से भिन्न है। इस भिन्नता को निश्चिय ही हम भाषा और शिल्प दोनों स्तरों पर भी देख सकते हैं।

2.5.1 काव्य–भाषा

प्रयोगवादी काव्य की भाषा छायावाद से भिन्न तो है ही, वह प्रगतिवादी कविता से भी भिन्न है। छायावादी कविता की भाषा में कोमलता और सुकुमारता के गुण थे तो प्रगतिवादी कविता में पहली बार कविता की भाषा को बोल–चाल के निकट लाने की कोशिश की गयी। प्रयोगवाद में शब्द प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया गया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार यद्यपि प्रयोगवादी कवियों की भाषा में आरंभ में दुरूहता और अनगढ़पन अधिक था परंतु बाद में भाषा अधिक सहज और सरल बनी। उसमें अधिक पारदर्शिता और संप्रेषणीयता आई। भाषा में गेयता और आलंकारिकता कम हुई। सभी प्रयोगवादी कवियों की भाषा एक–सी नहीं है। अज्ञेय की भाषा आरंभ में दुरूह और बौद्धिक अधिक थी, बाद में भाषा बोलचाल के नजदीक आई। गिरिजाकुमार माथुर की भाषा में गेयता का तत्व अधिक रहा है। तो आरंभ में उनकी भाषा पर छायावाद का असर देखा जा सकता है। बाद में उनकी कविता की भाषा में बोलचाल का ज्यादा स्वाभाविक रूप दिखाई देता है। शमशेर के शब्द प्रयोग यद्यपि सरल हैं परंतु अर्थ की दृष्टि से अधिक गहन हैं। वे सिर्फ शब्दों तक ही अपनी कविता के अर्थ को नहीं बांधते बल्कि उससे आगे शब्दों के बीच के मौन अंतराल में काव्यार्थ छिपा होता है।

2.5.2 छंद और लय

छंदबद्ध कविता से मुक्ति का आरंभ छायावाद के समय से ही हो गया था, लेकिन गद्य और पद्य की भाषा के मूल में अंतर क्या हो, यह लगातार विवाद का विषय रहा है। कविता पहले छंद से मुक्त हुई, फिर तुक से, फिर शब्द को लय से। अज्ञेय ने काव्य को 'शब्द' माना है। उनके अनुसार ध्वनि, छंद लय आदि के सभी प्रश्न शब्द में से निकलते और शब्द में विलय होते हैं। अज्ञेय कविता में किसी–न–किसी रूप में गेय तत्व को आवश्यक मानते हैं।

डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि 'छायावाद–युग में जो मुक्त छंद वैकल्पिक था, वह प्रयोगवादी कविता का मुख्य स्वर हो गया। मुक्तछंद को ही विशेष रूप से अपनाने के कारण प्रयोगवादियों

ने इसमें नये–नये स्वरों और नयी–नयी लयों के प्रयोग किये। छायावाद में प्रायः रोला और घनाक्षरी की लय पर ही मुक्तछंद लिखे गये, लेकिन प्रयोगवाद में सवैया तथा अन्य प्राचीन छंदों की लय का मुक्तढंग से प्रयोग किया गया।'

प्रयोगवादी कवियों ने गीत भी लिखे हैं लेकिन डॉ. नामवर सिंह के विचार में 'छायावादी गीतों की तुलना में प्रयोगवादी गीत कम मोहक और अधिक सपाट प्रतीत होते हैं।' विशेष रूप से अज्ञेय के गीत में लय की रक्षा अंत तक नहीं हो पाती। गिरिजाकुमार माथुर में अज्ञेय की तुलना में गेयता अधिक है परंतु अर्थ की दृष्टि से वह गहनता नहीं है जो अज्ञेय में है।

2.5.3 प्रतीक और बिंब

अज्ञेय काव्य में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं। उनके अनुसार 'कोई भी स्वस्थ काव्य–साहित्य प्रतीकों की, नये प्रतीकों की सृष्टि करता है और जब वैसा करना बंद कर देता है तब जड़ हो जाता है – या जब जड़ हो जाता है तब वैसा करना बंद करके पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर करने लगता है। 'अतः प्रतीक को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। उनकी चर्चित कविता सोन–मछली इसका श्रेष्ठ उदाहरण है –

हम निहारते रूप
कांच के पीछे हांफ रही मछली।
रूप–तृषा भी
(और कांच के पीछे) है जिजीविषा।

(अरी ओ करूणा प्रभामय)

प्रयोगवादी कविता में प्रतीक 'लाक्षणिक वक्रता' से आगे बढ़कर सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। अज्ञेय के यहाँ प्राकृतिक प्रतीकों का अधिक प्रयोग है। यद्यपि उनमें विविधिता कम है। भारतभूषण अग्रवाल और गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में प्रायः परंपरागत प्रतीकों का ही प्रयोग हआ है। इनके यहाँ प्रतीकों के प्रयोग में किसी गहरी सर्जनात्मकता और वैचारिक ऊर्जा के दर्शन नहीं होते। शमशेर के प्रतीक अधिक दुरूह हैं जबकि मुक्तिबोध में मिथकीय, प्राकृतिक और आधुनिक जीवन से लिए गए विभिन्न तरह के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है।

काव्य बिंब का संबंध भाषा की सर्जनात्मक शक्ति से है तथा इसका निर्माण मनुष्य के ऐन्द्रिक बोध का ही प्रतिफल है। शब्द, भाव और विचार के अमूर्त संकेत तो हैं लेकिन इन अमूर्त संकेतों में यह शक्ति भी होती है कि वह अमूर्त संकेतों के माध्यम से एक मूर्त चित्र निर्मित कर सकता है। यही बिंब निर्माण की प्रक्रिया है। प्रयोगवादी कविता बिंब निर्माण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। अज्ञेय के यहाँ बिंब अधिक हैं, सामाजिक जीवन से लिए गये बिंब कम हैं। मुक्तिबोध के यहाँ मानव–स्थितियों से जुड़े बिंब अधिक हैं। मुक्तिबोध नये तरह के बिंबों का अधिक प्रयोग करते हैं। अज्ञेय के काव्य–बिंब प्रायः सामान्य और सरल होते हैं लेकिन वह कभी–कभी उनके द्वारा जीवन की किसी ऐसी समस्या को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करते हैं जो उतनी सरल और सामान्य नहीं होती। अज्ञेय की अपेक्षा शमशेर के यहाँ सौंदर्य–बिंबों का रूप अधिक संश्लिष्ट और सूक्ष्म है। उन्होंने कई कविताओं में प्रकृति के बिंबों को अपनी भावनाओं के साथ इस तरह अंतर्ग्रंथित किया है कि वह केवल वस्तु का चाक्षुष बिंब न होकर कवि का मानसिक प्रतिबिंब बन जाता है।

ऐसा मानसिक प्रतिबिंब जिसमें स्वयं कवि का 'मैं' घुलमिल रहता है। उदाहरण के लिए 'एक पीली शाम' कविता को लिया जा सकता है –

एक पीली शाम
पतझर का जरा अटका हआ पत्ता
शांत
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुख कमल
कृश म्लान हारा–सा
'कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं?

(कुछ कविताएँ)

2.6 प्रयोगवादी काव्य का विकास

आरंभ में 'तार सप्तक' की चर्चा करते हुए हमने लिखा था कि यद्यपि अज्ञेय ने प्रयोग की चर्चा'तार सप्तक' (1943) से आरंभ की थी परंतु तार सप्तक को प्रयोगवाद की शुरुआत का आधार नहीं बनाया जा सकता । प्रयोगवाद को विधिवत् मान्यता 'प्रतीक' (1947) और 'दूसरा सप्तक' (1951) से मिली और इन दोनों के प्रकाशन के केंद्र में अज्ञेय रहे; इसलिए अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक भी माना जाता है। वैसे भी अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि अज्ञेय की अवधारणाओं का प्रयोगवाद से गहरा संबंध है। अज्ञेय के अतिरिक्त जिन कवियों को प्रयोगवादी माना जाता रहा है, उनमें प्रमुख हैः गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता आदि। इन कवियों में सभी प्रयोगवाद को उपर्युक्त अवधारणाओं से पूर्णतः सहमत नहीं है। उदाहरण के लिए मुक्तिबोध और शमशेर में प्रयोगशीलता की ओर झुकाव तो रहा परंतु उन्होंने मार्क्सवाद का विरोध या विचारधारा के प्रति विद्रोह कभी नहीं किया बल्कि वे हमेशा मार्क्सवादी कवि के तौर पर ही पहचाने गये।

एक काव्यधारा के रूप में प्रयोगवाद अल्पजीवी ही रहा। "तार सप्तक' (1943) से प्रयोग की चर्चा होते हए भी प्रगतिवाद की विरोधी काव्यधारा रूप में प्रतिष्ठा उसे 1947 में ही मिल सकी। लेकिन 53–54 तक आते–आते प्रयोग से अधिक चर्चा नयी तरह की कविता, जिसे नयी कविता नाम दिया गया की होने लगी। प्रयोगवादी दौर में जो काव्य प्रवृत्तियाँ उभरनी शुरू हुई थीं उन्होंने स्पष्ट रूप–आकार 53–54 के बाद ही ग्रहण किया। यही कारण है कि प्रयोगवादी दौर में जो कवि सक्रिय थे वे नयी कविता में भी उतने ही सक्रिय रहे। यहाँ हम उन कवियों की चर्चा कर रहे हैं जिन्होंने प्रयोगवाद को सुदृढ़ करने में योग दिया।

अज्ञेय (1911–1987) को प्रयोगवाद का प्रवर्तक कहा जा सकता है। प्रयोगवादी काव्य की जो भी विशेषताएँ और सीमाएँ हैं उन्हें हम श्रेष्ठ रूप में अज्ञेय के काव्य में देख सकते हैं। अज्ञेय का पहला काव्य संग्रह 'भग्नदूत' 1933 में प्रकाशित हुआ। चिंता (1942) और इत्यलम् (1946) तक की कविताओं में प्रयोगवादी रूझाव बहुत साफ उभरकर सामने नहीं आया था। लेकिन 1949 में प्रकाशित 'हरी घास पर क्षण भर' में प्रयोगवाद को स्पष्ट पहचाना जा सकता है। अज्ञेय की

आरंभिक कविताओं पर छायावाद का प्रभाव भी देखा जा सकता है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार 'मुक्ति और जीने की लालसा या कहें स्वतंत्रता की खोज ही अज्ञेय के काव्य की सही जमीन है। अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति के प्रति विशेष लगाव के दर्शन होते हैं। उनके अधिकांश प्रिय प्रतीक भी प्राकृतिक हैं जैसे नदी, तट, मछली, सागर, चिड़िया, चाँदनी, इन्द्रधनुष, साँझ आदि। इसके विपरीत उनकी कविताओं में शहरी जीवन के प्रति गहरी वितृष्णा के दर्शन भी होते हैं। औद्योगिक सभ्यता के प्रति उनके गहरे अलगाव को व्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। अज्ञेय ने अपनी कविताओं में काव्य सत्य पर विचार किया है। जिजीविषा और सत्य की निरंतर खोज उनकी कविताओं के प्रिय विषय रहे हैं। उनके प्रमख काव्य संग्रह हैं– बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आंगन के पार द्वार (1961), कितनी नावों में कितनी बार (1967) आदि।'

अज्ञेय ने काव्य संबंधी समस्याओं पर भी निरंतर लेखन किया है। त्रिशंकु (1945), आत्मनेपद (1960) और हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य (1967) में उनके साहित्य संबंधी लेखों को संग्रहीत किया गया है।

गिरिजाकुमार माथुर(1919) ने काव्य यात्रा की शुरुआत 'मंजीर' (1941) से की थी। उनके काव्य की जमीन प्रेम और सौंदर्य है। 'नाश और निर्माण' (1946), 'धूप के धान' (1955), 'जो बँध नहीं सका' (1968) उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। नारी–प्रेम और प्रकृति प्रेम उनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं। गेयता उनके काव्य की खास पहचान है। वे काव्य में नाद–सौंदर्य को प्रमख स्थान देते हैं। अज्ञेय की तरह उनकी सौंदर्य–चेतना सामाजिक जीवन से निरपेक्ष नहीं है। प्रेम और सौंदर्य दोनों ही संसार के बीच आकार लेते हैं। उनकी कविता में दैहिकता अधिक है कल्पनाशीलता कम है। प्रयोगवादी कवियों में रूमानियत का सबसे अधिक प्रभाव गिरिजाकुमार माथुर पर ही रहा है। नयी कविता के दौर तक आते–आते उनमें यह रूमानियम कम हुई है।

भारतभूषण अग्रवाल (1919–1975) का प्रथम काव्य संग्रह 'छवि के बंधन' (1941) पर छायावाद का और दूसरे काव्य संग्रह 'जागते रहो' (1942) पर प्रगतिवाद का प्रभाव था। तीसरा संग्रह 'मुक्तिमार्ग' (1947) में उन्होंने अपना अलग रास्ता खोजा। भारत भूषण अग्रवाल की कविताओं में मुख्यतः दर्द की अभिव्यक्ति हुई है अपनी भी और जगत की भी। इस दर्द की अभिव्यक्ति कहीं त्रासद रूप में तो कहीं व्यंग्य रूप में है। प्रयोग की प्रवृत्ति भारतभूषण अग्रवाल में भी है लेकिन उनकी कविताएँ वक्तव्य प्रधान अधिक हैं। प्रतीक भी सामान्य और सरल है। कविता में भावनाओं की गहराई या जटिल वैचारिकता का अभाव है। उनके अन्य प्रमुख काव्य संग्रह हैं : "ओ अप्रस्तुत मन' (1959), 'अनुपस्थित लोग' (1965), 'एक उठा हुआ हाथ' (1979) तथा "उतना वह सूरज है' (1977) आदि।

श्री नरेश मेहता (1924) प्रयोगवाद के अन्य प्रमुख कवि हैं। इन पर भी आरंभ प्रगतिवाद का प्रभाव था। नरेश मेहता की कविता में भी प्रकृति के प्रति गहरे लगाव के दर्शन होते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति अपने विविध रूपों में आती है। नदी, झील, आकाश, बादल, सूरज, चाँद, चिड़िया, फूल, वसंत, पहाड़, घाटी, सावन आदि। कई रूपों में प्रकृति उनकी कविताओं में मौजूद हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार 'नरेश जी की कविता में असंख्य प्रकृति चित्रों को देखकर लगता है जैसे कवि–मन पर प्रकृति का जादू हो। जहाँ भी प्राकृतिक दृश्य आते हैं उनका वर्णन कवि बड़े उल्लास के साथ करता है।' नरेश मेहता की कविता में उषा, धूप और

किरन का वर्णन सबसे अधिक हुआ है।'दूसरा सप्तक' में नरेश मेहता की कविताएँ संकलित हैं। 'संशय की एक रात' (1962) प्रसिद्ध काव्य रचना है।'समय देवता' उनकी लंबी कविता है। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं 'वन पाखी सुनो' (1957), बोलने दो चीड़ को' (1961), "मेरा समर्पित एकांत' (1962) ।

शमशेर और मुक्तिबोध दोनों का संबंध प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता तीनों से रहा है। इन दोनों कवियों में यद्यपि प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति काफी मुखर रही है परंतु वैचारिक दृष्टि से इन्हें प्रयोगवादी नहीं कहा जा सकता।

शमशेर बहादुर सिंह (1911) यद्यपि वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी कवि हैं परन्तु उनका कवि सौंदर्यवादी है। शमशेर में प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक है। उनकी कविता में सूक्ष्म और संश्लिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। उनका झुकाव अमूर्तन की ओर अधिक है यही कारण है कि कहीं–कहीं उनकी कविता दूरूह भी हो जाती है। लेकिन परिष्कृत बिंब, उत्कृष्ट शिल्प और आत्मीयता का भाव उनकी कविताओं को असामान्य भी बनाता है। शमशेर भी 'दूसरा सप्तक' के कवि हैं। इसके अतिरिक्त उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं 'कुछ कविताएँ' (1959), 'कुछ और कविताएँ' (1961), 'चुका भी हूँ नहीं मैं' (1975)।

मुक्तिबोध (1877–1964) आत्मसंघर्ष के कवि हैं। उनकी कविताएँ उनके आत्मसंघर्ष का ही प्रतिफलन है लेकिनयह आत्मसंघर्ष बाहरी संघर्ष से उत्प्रेरित है, इसके पीछे वैयक्तिक आकांक्षा या अहम् का भाव नहीं है। मुक्तिबोध वस्तुतः तीखे सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। सामाजिक संघर्ष उनके आत्मसंघर्ष का कारण है। सामाजिक यथार्थ उनकी कविताओं में 'अंधेरे' के रूप में मौजूद है। अंधेरा उनकी कविताओं में बार–बार भिन्न–भिन्न रूपों में आता है। यथार्थ उनके यहाँ भयावह खबर की तरह है। उनकी कविताएँ प्रायः बहुत लंबी होती है जिनमें सामाजिक यथार्थ और आत्मसंघर्ष मिल कर ऐसी फैंटेसी का निर्माण करते हैं जो हिंदी कविता की अमूल्य निधि है। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं – 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और 'भूरी–भूरी खाक धूल'।

बोध प्रश्न –2

1. प्रयोगवाद की काव्य भाषा की निम्नलिखित विशेषताओं में से जो सही न हो उन पर (x) का चिन्ह लगाइए।
   क) कोमलता और सुकुमारता प्रयोगवाद की काव्य भाषा की प्रमुख पहचान है। ( )
   ख) प्रयोगवाद की काव्य भाषा बोलचाल के अधिक नजदीक है। ( )
   ग) प्रयोगवाद की भाषा छायावादी काव्य भाषा के अधिक नजदीक है। ( )
   घ) प्रयोगवाद की भाषा में आलंकारिता की प्रवृत्ति कम है। ( )

2. निम्नलिखित कथन में से जो सही हो उसके आगे (√) और जी गलत हो उसके आगे (x) का चिन्ह् लगाइए।
   क) प्रयोगवाद की कविता मुक्त छंद की कविता है। ( )
   ख) प्रयोगवाद में प्रतीक लाक्षणिक वक्रता तक सीमित है। ( )
   ग) अज्ञेय की कविताओं में सामाजिक संघर्ष की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। ( )
   घ) मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष के कवि हैं। ( )

ङ) नरेश मेहता की कविता में प्रकृति पूर्णतः अनुपस्थित है। ( )

अभ्यास

1. अज्ञेय और मुक्तिबोध की काव्यगत विशेषताओं की निम्नलिखित आधार पर तुलना कीजिए।

   क) विचारधारा के संबंध में

   .....

   .....

   .....

   ख) सामाजिक यथार्थ के संबंध में

   .....

   .....

   .....

   ग) बिंब के संबंध में

   .....

   .....

   .....

2.7 नयी कविता की पृष्ठभूमि

नयी कविता का आरंभ कब से हुआ, इसके बारे में स्वयं नयी कविता के कवि भी आपस में सहमत नहीं हैं। कुछ कवि आलोचक प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग–अलग काव्यधारा मानते हैं, जबकि कुछ के अनुसार प्रयोगवाद का ही विकास नयी कविता के रूप में हुआ। 'दूसरा सप्तक' (1951) के प्रकाशन से नयी कविता की चर्चा आरंभ हुई और कई कवि–आलोचक 'दूसरा सप्तक' को नयी कविता का प्रस्थान बिंदु मानते हैं जबकि डॉ. रामविलास शर्मा नयी कविता की शुरुआत 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं, जिसके प्रथम अंक का प्रकाशन सन् 1954 में हआ था। गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग–अलग कृत्रिम वर्गों में देखना असंगत मानते हैं। उनके अनुसार प्रयोगवाद और नयी कविता आधुनिकता की भिन्न स्टेज है। तीसरा सप्तक (1959) की भूमिका में अज्ञेय प्रयोगवाद या प्रयोगशीलता शब्दों की अपेक्षा नयी कविता शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित समझते हैं।

नयी कविता के उदय पर विचार करने से पूर्व हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि 1947 में उत्पन्न काव्यधारा 1954–55 तक आते–आते विलुप्त क्यों होने लगी। हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद की धारा बहुत दूर तक न चल सकी। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए समीक्षक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा कि 'कुल मिलाकर प्रयोगवाद ने अधिक बल कविता के शिल्प विधान पर दिया था। अनुभूतियों के क्षेत्र में भी उसने कुछ नवीनता का संचरण किया। परंतु समस्त जीवन के संबंध में उसका अपना कोई सुस्पष्ट दृष्टिकोण नहीं था। यह भी सही है कि प्रयोगवाद के लिए यह बहुत इष्ट न था। अंततः वह अनुभूतियों के चित्रण तथा शिल्प–विधान के क्षेत्र में एक प्रयोग ही था। अतः उसकी सार्थकताभी इसी रूप में है। प्रयोगवाद का हमारे इतिहास में

स्थायी होना बहुत कुछ स्पृहणीय न था। इतने लंबे समय तक प्रयोग की स्थिति रहना प्रवृत्तिगत अस्थिरता का द्योतक होता।'

प्रयोगवाद और नयी कविता

प्रयोगवाद और नयी कविता का संबंध जटिल नहीं है। प्रगतिवाद के उत्तर काल में जब काव्य क्षेत्र में ऐसी प्रवृत्तियाँ पनपने लगीं की काव्य की सामाजिक भूमि जो बजाए व्यक्ति की स्वानुभूति पर अधिक बल देती थी, जो काव्य में वस्तु पक्ष की बजाए रूप–पक्ष पर बल देती थी, जो काव्य की किसी बनी बनाई शैली का अनुसरण करने की बजाए नये प्रयोगों पर बल देती थी, ऐसी स्थिति में प्रगतिवाद के बढ़ते अंतर्विरोधों के साथ ही इन प्रवृत्तियों ने अपना प्रभुत्व बढ़ाना शुरू किया। ये ही प्रवृत्तियाँ बाद में प्रयोगवाद के रूप में जानी जाने लगी। आरंभ में प्रयोग की चर्चा का अर्थ प्रगतिवाद का विरोध नहीं था। इसीलिए 'तार सप्तक' के प्रकाशन से लेकर 'प्रतीक' के प्रकाशन के बीच के दौर में प्रयोगों की चर्चा होते हए भी इसने वाद का रूप–ग्रहण नहीं किया था। लेकिन जब अज्ञेय ने 'प्रतीक' का प्रकाशन आरंभ किया और उसके माध्यम से प्रगतिवाद का विरोध किया जाने लगा, तब प्रयोगवाद की चर्चा प्रगतिवाद की विरोधी काव्य प्रवृत्ति के रूप में होने लगी। अज्ञेय आरंभ से ही प्रयोगवाद शब्द को उचित नहीं मानते थे। उन्होंने 1952 में इलाहाबाद से प्रसारित रेडियो वार्ता में प्रथम बार 'नयी कविता' शब्द का प्रयोग किया। 1954 में 'नयी कविता' (संपादक : जगदीश गुप्त) पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हआ तो 'नयी कविता' शब्द प्रचलित हो गया। 'नयी कविता' आंदोलन के सूत्रधार कवियों आलोचकों (जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही, धर्मवीर भारती रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकांत वर्मा) ने अपनी काव्य–सृजन की परंपरा का संबंध प्रयोगवाद व अज्ञेय से जोड़ा तथा 'मार्क्सवाद'और प्रगतिवाद का विरोध किया। नयी कवितावादी आरंभ में अपनी कविता को प्रयोगवाद और अज्ञेय से जोड़ने में गर्व महसूस करते थे, लेकिन धीरे–धीरे वे अपने काव्य को प्रयोगवाद के साथ जोड़ते हुए भी उससे भिन्न व विशिष्ट बताने लगे तथा बाद में अपनी विशिष्टता पर अधिक बल देने लगे।

नयी कविता कालीन परिस्थितियाँ

हमने प्रयोगवादकालीन परिस्थितियों की चर्चा करते हुए लिखा था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी शिविर और समाजवादी शिविर के बीच बढ़ते तनाव का असर तत्कालीन लेखकों और बुद्धिजीवियों पर भी पड़ रहा था। इन दोनों शिविरों के बीच बढ़ते तनाव ने शीतयुद्ध को जन्म दिया। इस दौर में ऐसे सांस्कृतिक और साहित्यिक संगठनों ने जन्म लिया जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा और समाजवादी देशों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। यह कहा गया कि मार्क्सवाद हर तरह की स्वतंत्रता का अपहरण करता है। समाजवादी देशों में न जनता को न ही बुद्धिजीवियों – लेखकों को स्वतंत्रता प्राप्त है। यह भी कहा गया कि पूंजीवाद और समाजवाद तथा वाम और दक्षिण जैसे भेद आज अनावश्यक है व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोच्च मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति को लेकर भी नये लेखकों और कवियों में असंतोष का भाव था। प्रगतिवादी लेखकों ने तो स्वतंत्रता को अधूरा बताया ही था, नयी कवितावादी भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति से असंतुष्ट थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्य सत्ता जिन वर्गों के हाथ में आई उससे जनता की समस्याओं का समाधान संभव नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में जनता का असंतोष बढ़ा, देश में आर्थिक विषमता बढ़ी और बेराजगारी पनपी। असंतुलित विकास हुआ तथा राष्ट्रीय एकता और बाहरी दबावों की समस्याओं का विस्तार हुआ। इस राष्ट्रीय स्थिति ने मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों को

निराश और कुंठित किया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाले शीतयुद्ध ने उन्हें दिग्भ्रमित भी किया। नयी कविता का आंदोलन इसी पृष्ठभूमि में उदित हुआ।

2.8 नयी कविता का अर्थ

यह विवाद का विषय रहा है कि नयी कविता नाम से जानी जाने वाली कविता किन अर्थों में नयी है और इस काल की कविता को ही नयी कविता कहना कहाँ तक उचित है। जबकि क्या यह सच नहीं है कि छायावादी कविता भी अपनी पूर्ववती काव्यरूपों से नयी ही थी। अगर नयी कविता का तात्पर्य यह है कि वह पूरी तरह से नयी है और उसमें अपने पूर्ववर्ती काव्य रूपों की कोई छाया नहीं है तो यह कहना भी सही नहीं है। नयी कविता पर प्रगतिशील और प्रयोगवाद ही नहीं बल्कि छायावाद के प्रभाव को भी स्वीकारा गया है। डॉ. जगदीश गुप्त इस बात पर बल देते हैं कि 'कविता में नवीनता की उत्पत्ति सच्ची कविता लिखने की आकांक्षा से ही होती है।' नयी कविता को परिभाषित करते हए अनुभति की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया गया। अज्ञेय ने अनुभूति को साधारणता को ही विशिष्ट माना है। डॉ. जगदीश गुप्त ने नयी कविता को अपने युग की नयी वास्तविकता के अनुरूप बताया। धर्मवीर भारती ने नयी कविता को पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव कीकविता कहा है। नयी कविता में व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना भी प्रबल रही है। मुक्तिबोध के अनुसार नयी कविता की अपनी कोई विशेष दार्शनिक धारा या विचारधारा नहीं रही। उनके अनुसार नयी कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की पर्सनल सिचुएशन की कविता है।

नयी कविता की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नयी कविता की कोई सुनिश्चित परिभाषा प्रस्तुत करना असंभव है। यहाँ तक तो सही है कि संपूर्ण नयी कविता का संबंध अपने युग के यथार्थ से है लेकिन इस यथार्थ को व्यक्त करने वाली दृष्टियाँ भिन्न–भिन्न हैं। इनमें कई दृष्टियाँ एक दूसरे से नितांत विरोधी भी हैं। नयी कविता पर विचार करते हुए जहाँ एक ओर इस बात को ध्यान में रखना होगा कि उसका संबंध तत्कालीन यथार्थ से है वहीं उसमें अंतर्निहित विभिन्न दृष्टियों, काव्याभिरुचियों एवं कवि की वैयक्तिक क्षमताओं को भी ध्यान में रखना होगा।

2.9 नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

नयी कविता पर जैसा कि कहा जा चुका है द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव था। इस दौर में पश्चिम में अस्तित्ववाद जैसे नये दर्शन की लोकप्रियता बढी। आधुनिकतावाद की भी व्यापक चर्चा होने लगी। नयी कविता के रचनाकारों पर इन दोनों विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा। युद्धों की विभीषिका ने यूरोप के जन–जीवन को पूरी तरह से झकझोर दिया। मृत्यु और विनाश का भय जीवन की वास्तविकता बन गया इसके कारण लोग भोगवाद की ओर भी प्रवृत्त हुए। विश्व बाजार की होड़ और युद्धों की जघन्यता के बीच व्यक्ति को यह लगने लगा कि सत्य केवल मृत्यु है शेष सब कुछ मिथ्या है। आस्था, मूल्य, समाज, आदर्श भविष्य सब मिथ्या हैं। अस्तित्ववाद के उपर्युक्त सोच का असर नयी कविता के रचनाकारों पर भी दिखाई देता है।

आधुनिकतावाद का संबंध पूंजीवादी विकास से है। पूंजीवादी विकास के साथ उभरे नये जीवन मूल्यों एवं नयी जीवन–पद्धति को आधुनिकतावाद की संज्ञा दी जा सकती है। आधुनिकता ने जहाँ एक ओर स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मानव मूल्य दिए, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक सभ्यता और मशीनीकरण ने कई नयी समस्याएँ भी उत्पन्न कर दी। मशीनों के सामने व्यक्ति अपने को निरूपाय समझने लगा। शहरीकरण और भीड़–भाड़ ने मनुष्य को अकेला कर दिया। उपर्युक्त परिस्थितियों और सोच ने नयी कविता की विषय वस्तु को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाई।

नयी कविता पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव रहा है। नयी कविता में वस्तुतः दो तरह की धारा रही है एक धारा जो अस्तित्ववाद–आधुनिकतावाद से प्रभावित थी, दूसरी धारा जो मार्क्सवाद से प्रभावित थी। कई नये कवि ऐसे भी थे जिन्होंने स्पष्ट रूप से कोई पक्ष ग्रहण नहीं किया।

2.9.1 व्यक्ति स्वातंत्र्य

व्यक्ति स्वातंत्र्य नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति कही जा सकती है। नयी कविता आंदोलन के दौरान नये कवियों ने नये मनुष्य की प्रतिष्ठा का नारा दिया। यह नया मनुष्य कैसा हो इसको लेकर उनमें तीव्र मतभेद था। कोई इसे लघु मानव (लक्ष्मीकांत वर्मा) की संज्ञा दे रहा था तो कोई इसे सहज मानव (विजयदेव नारायण साही) कोई इसे स्वतंत्रता का असली प्रवक्ता बता रहा था तो कोई इसे भीड़ से घिरा अकेला और एकाकी। लेकिन यह मानव मध्यवर्ग का ही प्रतिनिधि था। यह मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने को व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता का प्रबल पक्षधर मानता था। समाज की मत मान्यताओं और रूढ़ियों से घिरा यह व्यक्ति अपने को हीन, दीन, अकेला, कुंठित, पीड़ित और उपेक्षित समझता था। यह 'भीड़ से घिरा' परंतु अपने निजी विवेक के प्रति अत्यधिक सजग था। नयी कविता में इसी व्यक्ति विशेष की आशाओं, निराशाओं, आस्थाओं, अनास्थाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्वतंत्र इयत्ता का प्रतिपादन सभी कवियों ने एक ढंग से नहीं किया है। लक्ष्मीकांत वर्मा के यहाँ व्यक्ति की एकांतप्रियता के प्रति विशेष आग्रह है। व्यक्ति को लघुता के महत्व का प्रतिपादन भी उन्होंने अपनी कविताओं में किया है। डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार वैयक्तिकता और सामूहिकता दोनों ही असत्य और छल है इसलिए सामूहिकता के छल में व्यक्ति अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को खोए, इससे कहीं बेहतर है कि वह अपनी वैयक्तिकता की रक्षा करे। डॉ. भारती अपने काव्य नायक को पराजित, उत्पीड़ित, टूटा हुआ, जर्जर, कुंठित और त्रासदी झेलते हुए एक अकेले शहीद के रूप में पेश करते हैं।

नयी कविता में भीड़ बनाम अकेला व्यक्ति का विवाद भी प्रमुख रहा है। लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि कवियों ने भीड़ बनाम व्यक्ति के द्वंद्व को कविता में वयक्त किया है। भीड़ के मुकाबले में खड़े व्यक्ति को उससे अलग और लघु भी मानते हैं। जनता को भीड़ समझना और व्यक्ति की कथित लघुता को महिमामंडित करना मध्यवर्गीय व्यक्ति के व्यक्तिवादी सोच का ही तार्किक परिणाम है। परंतु नयी कविता के दौर में ही जन के प्रति पर्ण आस्था की अभिव्यक्ति हम मुक्तिबोध की कविता में देख सकते हैं।रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह की कविता में जनता के प्रति वैसा अनादर व्यक्त नहीं हुआ है जैसा हम कई अन्य नये कवियों में देखते हैं।

2.9.2 आस्था और अनास्था

नयी कविता के दौरान आस्था का प्रश्न भी महत्वपूर्ण रहा। नये कवियों का कहना था कि हमारा काव्य अगर अनास्थावादी लगता है तो इसलिए कि आज की सच्चाई यही है। उनके अनुसार नयी कविता वादों, विचारधाराओं, रूढ़ियों, सामूहिक निर्णयों पर झूठी आस्था का विरोध करती है। वह नियतिवादी भविष्य के भ्रमजालों और आशा के झूठे जंजालों पर विश्वास नहीं करती। नयी कविता व्यक्ति के अपने विवेक पर आस्था व्यक्त करती है, क्योंकि व्यक्ति का विवेक ही उसे सही दिशा दे सकता है न कि बाह्य सत्य। धर्मवीर भारती निजी विवेक के अतिरिकत आस्था का और कोई बाह्य आधार नहीं स्वीकारते। 'अंधायुग' का प्रत्येक पात्र आस्था विहीन है किसी को भी भविष्य पर भरोसा नहीं है। मनुष्य का भविष्य उन्हें मृत नजर आता है, केवल आत्महत्या ही उन्हें दर्शन, धर्म, कला, संस्कृति तथा शासन में व्यक्त होती नजर आती है –

यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित
इस पूरी संस्कृति में,
दर्शन में, धर्म में, कलाओं में
शासन व्यवस्था में
आत्मधात होगा बस अतिम लक्ष्य मानव का।

(अंधायुग)

कुंवरनारायण ने भी 'आत्मजयी' में आस्था का प्रश्न उठाया है। 'आत्मजयी' में उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष को जिस परिणति तक पहुँचाया है इससे यही सिद्ध होता है कि वह व्यक्ति के बाह्य संघर्ष को आत्मचेतस स्तर पर हल कर लेना चाहते हैं। नये कवियों में सभी इतने आस्थाविहीन नहीं है। मुक्तिबोध की कविता इस बात का प्रमाण है। अज्ञेय के यहाँ भी परंपरा के प्रति एक आदर भाव मिलता है जिसे हम 'असाध्यवीणा' में देख सकते हैं।

2.9.3 औद्योगिक सभ्यता

पूँजीवादी विकास में तकनीकी प्रगति का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इसने बड़े उद्योगों की स्थापना को संभव बनाया जिसके कारण बड़े–बड़े नगर बसे। पारिवारिक ढांचे, सामाजिक संबंधों, जीवन मूल्यों में ऐसे परिवर्तन हुए जिसकी कल्पना इससे पहले के मनुष्य ने नहीं की थी। ये परिवर्तन सकारात्मक भी थे और नकारात्मक भी। बढ़ते औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला और असहाय बनाया, स्वार्थी और लोभी भी बनाया। इसलिए कवियों ने औद्योगिक सभ्यता की आलोचना भी की। अज्ञेय की ऐसी कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यंत्र व्यक्ति को केवल सुविधाएँ ही नहीं देता वह व्यक्ति से उसकी संवेदन शक्ति भी छीन लेता है। कुँवरनारायण के शब्दों में 'पहियों और पंखों वाली इस बेसिर पैर की सभ्यता में' यह पता लगाना मुश्किल है कि यहाँ आदमी मशीन को चला रहा है या मशीन आदमी को और तब ऐसे में मनुष्य की, जो तस्वीर उभरेगी वह कुछ–कुछ ऐसी होगी –

अपने ही हथियारों से घबराया मानव
पत्थर का देव और लोहे का दानव
यह युग
अपनी ही ताकत से हारा मनुष्य

अपने अतीत को दुहराता अंधा भविष्य
शहरों का कूड़ा झोंपड़ियों में फैलाया
अपनी जरूरतों को कोंड़ों से पिटवाया
इंसान । मगर बेजान। मकानों सा ढहाता
अपने से दूर पास बस्ती के रहता
सभ्यता। लगी नाखूनों पर पालिश जैसे
हम ठाठ फकीरी । बिकता जो पैसे–पैसे

(परिवेश : हम–तुम)

नगरीय जीवन की आलोचना अज्ञेय के अतिरिक्त लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, विपिनकुमार अग्रवाल, सर्वेश्वर की कविताओं में भी हैं। साही के यहाँ शहरी जीवन की आलोचना संवेदनात्मक धरातल पर की गई है। इन कवियों की कविताओं में जीवन के प्रति जिस ऊब, खीझ, निराशा और कुंठा की अभिव्यक्ति हुई है उसके मूल में शहरी जीवन की विषमताएँ हैं। मुक्तिबोध ने भी शहरी जीवन की वास्तविकता को उजागर किया है लेकिन इसके लिए वे विज्ञान और मशीन को नहीं बल्कि 'शोषण की सभ्यता के नियमों' को दोषी ठहराते हैं जिसके 'सियाह चक्रव्यूह' में मनुष्य के प्राण फंसे हुए हैं।

2.9.4 अनुभूतिपरकता

नयी कविता में अनुभूति की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया गया है। अज्ञेय यह मानते हैं कि संसार की अनुभूतियाँ और घटनाएँ साहित्यकार के लिए मिट्टी है जिनसे वह प्रतिमा बनाता है। लेकिन नये कवि अनुभूति को विशिष्टता पर विशेष बल देते हैं। इन कवियों के लिए अनुभूति की विशिष्टता का अर्थ किसी नवीन अनुभव से नहीं बल्कि अनुभव को अभिव्यक्त करने के नये अंदाज से है। इसे ही वे सौंदर्यानुभूति भी कहते हैं।

किसी कवि का सौंदर्य बोध दूसरे कवि से किस रूप में भिन्न है इसका पता उन कवियों के विषय चयन से लेकर भाववस्तु की अभिव्यक्ति के उपकरणों के चयन तक से लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए अज्ञेय मूलतः प्रकृति गौरव के कवि हैं और आरंभ से ही जनरव से दूर प्रकृ ति के वैविध्य रूपों के सौंदर्य को विभिन्न कोणों रूपों एवं रंगों में बाँधते रहे हैं। शमशेर एवं केदारनाथ सिंह भी प्रकृति और प्रेम के कवि है लेकिन उनकी प्रवृति कविताओं में जन जीवन का निषेध नहीं है। इन तीनों कवियों में यद्यपि सामाजिक जीवन के अंतर्विरोधों की अभिव्यक्ति प्रधान है। सामाजिक जीवन को प्रधानता से अभिव्यक्त करने वाले कवियों के भिन्न जीवन दर्शन के कारण उनकी कविताओं में भी भिन्नतानजर आती है। धर्मवीर भारती और रघुवीर सहाय के जीवन दर्शन की भिन्नता ने उनके काव्य के स्वरूप को दूर तक प्रभावित किया है। यही अंतर मुक्तिबोध और रघुवीर सहाय में देखा जा सकता है। कहने का अर्थ यही है कि प्रत्येक कवि के सौंदर्य बोध के अंतर के मूल में उन कवियों की जीवन दृष्टि, सौंदर्याभिरुचि सामाजिक यथार्थ से स्वीकृत, कलात्मक क्षमता आदि का हाथ रहता है।

2.9.5 प्रकृति प्रेम

प्रकृति संबंधी कविताएँ प्रायः सभी कवियों ने लिखी हैं। लेकिन प्रकृति के संबंध में इन कवियों का दृष्टिकोण छायावाद से भिन्न है। छायावादी कवि प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ था – एक नए

भावबोध के साथ यह भावबोध था – स्वतंत्रता। जिस समाज में छायावादी कवि रहता था, वहाँ बंधन ही बंधन थे। लेकिन स्वयं उसके हृदय में स्वतंत्रता का बीजारोपण हो चुका था। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की प्रतीति उसे समाज में तो नहीं प्रकृति में होती थी। इसलिए प्रकृति की उन्मुक्तता में उसे अपने हृदय की उन्मुक्तता के दर्शन होते थे। लेकिन नए कवि के सम्मुख दासता और बंधन की ऐसी जकड़न नहीं थी। देश स्वतंत्र हो चुका था पुराने मूल्य टूट रहे थे। देश का तेजी से औद्योगीकरण हो रहा था लेकिन इस औद्योगीकरण ने प्रकृति के उन्मुख सौंदर्य को मानव–जीवन से दूर कर दिया था। प्रकृति और मानव के बीच की दूरी को नए कवियों ने भिन्न–भिन्न रूपों में ग्रहण किया। अज्ञेय के प्रकृति लगाव की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। लेकिन उनके काव्य में प्रकृति चित्रण समाज निरपेक्ष अधिक है। गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, कुँवरनारायण, हरिनारायण व्यास आदि कवियों ने भी प्रकृति चित्रण के लिए सामान्य जीवन के अनुभव जगत् से बिंब ग्रहण किए हैं। श्री साही की प्रवृत्ति भी शहरी जीवन से जुड़े प्रकृति रूप की ओर है लेकिन सर्वेश्वर के प्रकृति गीतों का गहरा संबंध ग्रामीण जीवन से है।

रघुवीर सहाय ने अपनी प्रकृति कविताओं में केवल प्रकृति के बिंब ही प्रस्तुत नहीं किए हैं बल्कि वह अपने मन पर प्रकृति के किसी रूप विशेष के प्रभाव को भी व्यक्त करते हैं। 'पानी के संस्मरण' कविता में उन्होंने विभिन्न काल–खंडों में पानी के भिन्न–भिन्न स्मृति बिंबों को प्रस्तुत किया है।

कौंध : दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि
दुपहर : घना ताल : ऊपर झुकी आम की डाल
बयार : खिड़की पर खड़े, आ गई फुहार
रात : उजली रेती की पार, सहसा दिखी
शांत नदी गहरी
मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।

(सीढ़ियों पर धूप में)

केदारनाथ सिंह के यहां भी प्रकृति का कोई एक दृश्य–चित्र नहीं कौंधता बल्कि कई दृश्य–चित्र एक के बाद एक मानस पटल पर उतरते चले जाते हैं जिन्हें कवि काव्यबद्ध करता है। केदारनाथ सिंह की प्रकृति कविताओं में कृषक चेतना के दर्शन होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह और मुक्तिबोध के प्रकृति काव्य के संबंध में आप पहले पढ़ चुके हैं।

बोध प्रश्न –3

निम्नलिखित प्रश्नों के दिये गये उत्तरों में से जो सही उत्तर होंगे उनको कोष्ठक में लिखिए।

1. नयी कविता का आरंभ
   क) 'तार सप्तक' से माना जाता है।
   ख) 'प्रतीक' के प्रकाशन से माना जाता है।
   ग) 'नयी कविता' के प्रकाशन से माना जाता है।
   घ) 1947 से माना जाता है। ( )

2. नयी कविता पर

क) स्वातंत्रयोतर राष्ट्रीय स्थितियों का प्रभाव पड़ा।
ख) शीतयुद्ध का प्रभाव पड़ा।
ग) अस्तित्ववाद का प्रभाव पड़ा।
घ) उपर्युक्त तीनों का प्रभाव पड़ा। ( )

3. निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत, बताइए।
क) नयी कविता व्यक्ति स्वातंत्र्य की पक्षधर कविता है। ( )
ख) नयी कविता में क्षण के अनुभव को महत्वपूर्ण माना गया है। ( )
ग) अज्ञेय की कविता में प्रकृति समाज सापेक्ष रूप में व्यक्त हुई है। ( )
घ) नये कवियों ने औद्योगिक सभ्यता का विरोध किया है। ( )

अभ्यास

1. नयी कविता में प्रकृति चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

2.10 नयी कविता का शिल्प विधान

नयी कविता आंदोलन छायावादी और प्रगतिशील आंदोलनों से भिन्न था। जैसा कि डॉ. नामवर सिंह का मानना है, छायावाद के सभी कवि एक ही तरह की 'व्यापक भावभूमि' पर तथा प्रगतिवादी एक ही तरह की 'व्यापक विचारभूमि' पर अवस्थित थे, लेकिन नयी कविता के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। विचारों और अनुभूतियों के स्तर पर दो भिन्न ध्रुवों पर रहने वाले कवि नयी कविता आंदोलन में शरीक थे। लेकिन काव्य के रूप और शिल्प की दृष्टि से उनमें ऐसा ध्रुवीकरण नहीं था। नये कवि काव्य की प्रचलित शैलियों और रूढ़ माध्यमों में परिवर्तन चाहते थे। परिवर्तन की यह आकांक्षा नये जीवन मूल्यों और जीवन स्थितियों से जुड़ी हई थी। इसने नयी कविता को नये शिल्प और नयी भाषा की खोज की ओर प्रवृत्त किया।

2.10.1 काव्य–भाषा

जगदीश गुप्त ने खड़ी बोली की विकास परंपरा पर विचार करते हुए नयी कविता के भाषागत वैशिष्टय पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार खड़ी बोली का विकास अन्य भाषाओं के अनुकरण द्वारा हुआ। छायावाद युग में भाषा में सृजनशीलता का प्रथम बार सक्रिय विकास हुआ। उत्तर छायावादी गीतकार खड़ी बोली को बोलचाल के निकट लाए। प्रगतिवाद ने उसे गेयता के रोमांटिक वातावरण से निकालकर सहसा सड़कों और पगडंडियों पर चलने को मजबूर किया। प्रयोगवाद ने शब्द प्रयोग की विविध चेष्टाओं द्वारा उसकी अर्थवत्ता को सर्वाधित किया तथा नयी कविता ने उत्तराधिकार में प्राप्त समस्त प्रभावों के प्रति सजगता व्यक्त करते हुए शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति पर आधारित एक ऐसा सौंदर्य बोध विकसित किया जिसमें खड़ी बोली का खड़ापन बाधक न होकर साधक तत्व बन गया। जगदीश गुप्त का मानना है कि नयी कविता में गद्य और पद्य की भाषा इतनी अधिक निकट आ गई है कि दोनों की विभाजक रेखा कहीं–कहीं

सर्वथा विलुप्त होती हुई दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में नयी कविता बोलचाल की भाषा के निकट है। नयी कविता के प्रायः सभी कवियों ने इसे स्वीकार किया है।

नयी कविता की भाषा को बोलचाल की भाषा के नजदीक मानते हुए उसे सृजनात्मक स्वरूप प्रदान करने की प्रक्रिया के संबंध में उनमें मतभेद हैं। अज्ञेय अपने पूर्ववर्ती भाषा प्रयोगों से संतुष्ट नहीं थे और उनमें उन्हें सर्जनशीलता की संभावना नजर नहीं आई। इसीलिए वे कहते हैं –

ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

इससे स्पष्ट है कि अज्ञेय नयी काव्य भाषा तलाश करना चाहते हैं। अज्ञेय तद्भव शब्दावली का अधिक प्रयोग करते हैं। उनकी कई श्रेष्ठ रचनाओं में इसे देखा जा सकता है। बास, सौंधी, मिट्टी, असाढ़, बासन, हिया जैसे प्रयोग काफी मिलते हैं। अज्ञेय ने काव्य–भाषा में मौन के महत्व को भी स्वीकार किया है। 'एक मौन ही है जो अब भी नयी कहानी कह सकता है'। मौन से तात्पर्य है जो कविता में नहीं कहा गया परंतु जो सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त हआ है।

नये कवियों के बोलचाल की भाषा एक सी नहीं है बोलचाल की भाषा का जो रूप भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं में है वह रघुवीर सहाय के यहाँ नहीं है। भवानी प्रसाद मिश्र को आदर्श है 'जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख' सरल और सहज भाषा लिखना आसान नहीं है। नये कवियों की काव्य भाषा मूलतः उनकी काव्य प्रवृत्ति से निर्धारित हुई है। काव्य प्रवृत्ति में बदलाव के साथ भाषा में भी बदलाव आया है। गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है। नयी कविता में बिंब निर्माण की प्रवृत्ति के साथ–साथ विचार वक्तव्यों की प्रवृत्ति भी रही है। इन दोनों में भाषा का रूप अलग मिलता है। बिंब निर्माण में भाषा का अधिक सर्जनात्मक रूप मिलता है। विचार वक्तव्यों की दृष्टि से धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' की भाषा अधिक सर्जनात्मक है। शमशेर, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, केदार नाथ सिंह की काव्य भाषा के रूप अलग–अलग हैं परंतु उन्होंने भाषा का सर्जनात्मक इस्तेमाल किया है, रघुवीर सहाय की भाषा में निजता के साथ–साथ सरलता और सहजता है। केदारनाथ सिंह की काव्य चेतना मूलतः गीतकार की है, साथ ही बिंबात्मकता की ओर अधिक झुकाव होने के कारण उनकी भाषा पारदर्शी दर्पण की तरह 'चमकीली उजली' है।

2.10.2 छंद और लय

नयी कविता ने मुक्त छंद पर अधिक बल दिया है इसका परिणाम यह हुआ कि नयी कविता में गद्यात्मकता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि कविता में तुक या छंद हो या न हो लेकिन लय अवश्य होनी चाहिए। अगर लय नहीं है तो कविता के गद्य होने की पूरी संभावना है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के अनुसार कविता की लय छंद की लय या शब्द की लय से अनुशासित हो यह अत्यावश्यक नहीं है। नये कवियों ने शब्द को लय की बजाय 'अर्थ की लय' को महत्वपूर्ण माना है जगदीश गुप्त के अनुसार 'जिस प्रकार ध्वनि अथवा शब्द खंडों का फिर–फिर कर आना क्रमिक रूप से लय के विभिन्न प्रकारों को जन्म देता है, उसी प्रकार अर्थ खंडों का क्रमिक, ग्रंथित आवर्तन प्रत्यावर्तन अर्थ की लय के विविध रूपों की सृष्टि करता है।'

अर्थ की लय पर बल देने वाले रचनाकारों ने संगीत पक्ष की उपेक्षा की है तथा संगीत से मुक्त कविता को 'षुद्ध कविता' कहा है। लेकिन केदारनाथ सिंह की कविता संगीत तत्व से न केवल प्राणवान हई है बल्कि अर्थवान भी। रघुवीर सहाय ने संगीत के महत्व को स्वीकारते हुए 'आत्महत्या के विरुद्ध' में कहा है कि संगीत आधुनिक संवेदना का एक आवश्यक अंग है।

2.10.3 प्रतीक और बिंब

नयी कविता में प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार प्रतीक स्वयं गौण होता है, प्रमुखता उस दिशा की होती है जिधर वह संकेत करता है। प्रतीक का एक पक्ष बराबर परंपराजीवी और समाज स्वीकृति सापेक्ष होता है। कोई भी नया प्रतीक अपने इच्छित की प्राप्ति के लिए एक ऐतिहासिक प्रवाह की अपेक्षा रखता है। वह निरंतर प्रयुक्त होते–होते ही नियत अर्थ और निश्चित आकार ग्रहण करता है। नये कवियों ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग भी काफी किया है। मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुँवरनारायण, दुष्यंत कुमार, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि की कविताओं में वेदों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण तथा अन्य पौराणिक ग्रंथों से प्रसंगों एवं पात्रों का प्रतीक रूप में इस्तेमाल किया है। 'संशय की एक रात' काव्य में नरेश मेहता ने रामकथा का उपयोग युद्ध और शांति के संदर्भ में किया है, लेकिन इस प्रसंग की प्रस्तुति आधुनिक ही है। इसी तरह धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' के कृष्ण, युयुत्सु, अश्वत्थामा, आधुनिक मानव और मूल्यों के ही प्रतीक हैं। कुँवरनारायण के 'आत्मजयी' का नचिकेता आधुनिक आदर्शवादी मध्यवर्गीय व्यक्ति है। लेकिन इन सारे प्रतीकों को जिन कथानकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, वह पौराणिक होते हुए भी कवि का दृष्टिकोण, उसका परिप्रेक्ष्य तथा उसकी व्याख्या पौराणिक नहीं है। नये कवियों ने प्रकृति और जीवन के विविध रूपों से भी प्रतीक ग्रहण किये है।

प्रतीकों का प्रयोग नये कवियों में उनकी प्रवृत्तियों के अनुकूल हुआ है। उदाहरण के लिए लघुमानव या मध्यवर्ग के व्यक्ति के महत्व को स्थापित करने के लिए उसकी लघुता की श्रेष्ठता को स्थापित करने के लिए वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। गिरिजाकुमार माथुर के यहाँ व्यक्ति बौने के रूप में हैं –

हम सब बौने हैं, मन से, मस्तिष्क से भी
भावना से, चेतना से भी
बुद्धि से, विवेक से भी
क्योंकि हम जन हैं
साधारण हैं
हम नहीं हैं विशिष्ट

(बौनों की दुनिया, जो बंध नहीं सका)

लक्ष्मीकांत के यहाँ व्यक्ति 'भेड़' के रूप में है तो श्रीकांत वर्मा के यहां 'काकरोच' के रूप में।

नये कवि बिंब को कितना महत्वपूर्ण मानते थे यह अब केदारनाथ सिंह के वक्तव्य से स्पष्ट है जिन्होंने कहा था कि 'कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिंब विधान पर'। डॉ. केदारनाथ सिंह ने बिंब की परिभाषा करते हुए कहा कि 'बिंब वह शब्द चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐंद्रिय

अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। नयी कविता में बिंब विधान की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रकृति बिंबों का सुंदर प्रयोग मिलता है। उनके यहाँ प्रकृति बिंब ऐंद्रिक विलास के लिए नहीं बल्कि प्रायः किसी मानवीय अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जैसे 'अपनी छोटी बच्ची के लिए एक नाम' शीर्षक कविता में धूप के बिंब के माध्यम से बच्चे के प्रति पिता की ममत्व भावना को अभिव्यक्ति मिली है –

ओस भरे
कांपते गुलाब की टहनी पर
तितली के पंखों सी सटी हुई
धूप
एक नाम है हल्का सा
मेरे बेस्वाद खुले होठों पर
तेरे लिए

(अभी बिल्कुल अभी)

काव्य बिंबों में मानव जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा आदि कवियों के काव्य में है लेकिन सभी कवियों में यथार्थ का स्वरूप और स्थितियाँ एक सी नहीं हैं। यथार्थ का फलक इन कवियों के यहाँ व्यापक है यद्यपि मध्य वर्ग के जीवन की प्रधानता भी है। कई कवियों ने काव्य बिंब को ऐंद्रिय बोध की सीमाबद्धता से मुक्त कर उसे व्यापक अर्थवता भी प्रदान की है। अंत में, यह कहा जा सकता है कि नयी कविता को उत्कृष्ट रूप देने में उनके नवीन और संश्लिष्ट काव्य बिंबों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

2.11 नयी कविता का विकास

पचास के आस–पास लेखन आरंभ करने वाले कवि नयी कविता आंदोलन से मुख्य रूप से जुड़े थे परंतु अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल को भी नयी कविता आंदोलन के अंतर्गत शामिल किया जाता है। नयी कविता में सक्रिय कवियों में से सभी एक से नहीं थे। अगर उनमें शमशेर, मुक्तिबोध जैसे प्रतिबद्ध मार्क्सवादी कवि थे, तो अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता जैसे प्रयोगवादी कवि भी लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण शाही, कुँवरनारायण, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा जैसे नये कवि भी थे जिन्होंने मार्क्सवाद और प्रगतिवाद का दृढ़तापूर्वक विरोध किया तो केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय आदि पर शीतयुद्ध का प्रभाव औरों की अपेक्षा काफी कम था। आम तौर पर दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक के कवियों को नयी कविता में शामिल किया जाता है, लेकिन भवानीप्रसाद मिश्र भी हैं जिनमें नयी कविता की काव्यगत प्रवृत्तियों का सबसे कम प्रभाव है।

नयी कविता की व्यक्तिवादीधारा बाद में और अधिक विकास (या कहना चाहिए पतन) हुआ। व्यक्तिवादिता, समाज–निरपेक्षता, आत्मलीनता, आक्रोश और संत्रास आदि प्रवृत्तियाँ और पनपी। इनके बढ़ने से आगे आने वाली पीढ़ी के सामने एक तरह की अराजकता की स्थिति पैदा हो गई। मूल्यों और आदर्शों के प्रति अस्वीकार का भाव यहाँ तक बढ़ा कि कविता को भी खारिज करना आरंभ कर दिया गया। इसीलिए नयी कविता के बाद के दौर को अकविता नाम दिया

गया। अकविता के ह्रास के बाद नयी कविता की प्रगतिशीलधारा की पुनः स्थापना सातवें दशक के अंत में हुई। प्रयोगवाद और नयी कविता ने व्यक्तिवाद को जो महत्व प्रदान किया वह अकविता में पूर्णतः विघटित होकर विलीन हो गया। यहाँ पर नयी कविता से जुड़े कुछ ऐसे प्रमुख कवियों की चर्चा करेंगे जिनकी हमने पूर्व की किसी धारा के अंतर्गत चर्चा नहीं की है।

धर्मवीर भारती (1926) नयी कविता के प्रमुख कवियों में से हैं। उन्होंने पद्य के अतिरिक्त गद्य भी लिखा है। काव्य में उनका गीति नाट्य 'अंधा युग' सर्वाधिक चर्चित रचना है जिसमें महाभारत के अठारहवें दिन की घटनाओं को आधार बनाया गया है। 'कनुप्रिया' डॉ. भारती द्वारा रचित खंड काव्य हैं जिसमें राधा–कृष्ण के प्रेम को कथा का आधार बनाया गया है। 'ठंडा लोहा' और 'सात गीत वर्ष' उनके चर्चित काव्य संग्रह हैं। डॉ. भारती की कविताएँ 'दूसरा सप्तक' में भी संग्रहीत की गयी हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार 'भारती का रचनाकार एक अर्थ पाने के लिए बेचैन है और इसके लिए वह किसी नयी भावभूमि की खोज करना चाहता है।' भारती ने अपने काव्य द्वारा 'अंधे संशय, दासता पराजय से मानव भविष्य को बचाने के लिए मानवीय संभावनाओं की खोज' की है। इसके लिए उन्होंने मिथकों की नयी व्याख्याएँ की हैं। धर्मवीर भारती ने नारी प्रेम और प्रकृति के संबंध में भी कविताएँ लिखी है। प्रकति और नारी प्रेम दोनों के प्रति उनकी दृ ष्टि रूमानी है। 'अंधायुग' को छोड़कर उनके प्रायः संपूर्ण काव्य की भाषा पर रूमानीपन का प्रभाव देखा जा सकता है।

कुँवरनारायण (1927) के काव्य को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने बृहत्तर जिज्ञासा का काव्य कहा है। वस्तुतः कुँवरनारायण ने अपने काव्य में ऐसे सवालों को उठाया है जिसका संबंध मनुष्य के संपूर्ण अस्तित्व से हैं। उनका खंड काव्य 'आत्मजयी' इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसमें नचिकेता की कथा के माध्यम से जीवन मृत्यु के शाश्वत प्रश्नों पर विचार किया गया है। कुँवरनारायण की प्रवृत्ति चिंतन की ओर अधिक है। इसलिए उनकी काव्य भाषा में भी हम यह बात देख सकते हैं। आत्मजयी के अतिरिक्त उनके महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं : चक्रव्यूह (1956) परिवेश : हम तुम (1961)। कुँवरनारायण की कविताएँ तीसरा सप्तक में भी संग्रहीत है।

रघुवीर सहाय (1929) नयी कविता के उन कवियों में हैं जिनका प्रभाव समकालीन कविता पर सबसे अधिक पड़ा है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार रघुवीर सहाय का काव्य संसार मामूली, प्रभावग्रस्त और उपेक्षित जिंदगी का संसार है। उनकी कविताओं में बदलाव की बड़ी–बड़ी बातें तो नहीं है परंतु वे हमारे समकालीन यथार्थ को तल्खी और संवेदना के साथ पेश करते हैं। रघुवीर सहाय की कविताएँ संकीर्ण अर्थों में राजनीतिक नहीं हैं। किसी मत विशेष के प्रति आग्रही न होने के बावजूद उनकी कविताएँ प्रबल रूप से जनपक्षीय हैं। भाषा को भी उन्होंने नया तेवर दिया है। व्यंग्य, सपाटबयानी और बिंबात्मकता तीनों का उन्होंने सर्जनात्मक प्रयोग किया है। उनके प्रमुख संग्रह हैं : सीढ़ियों पर धूप में (1960), आत्महत्या के विरुद्ध (1967), हंसो–हंसो जल्दी हंसों (1975), लोग भूल गये हैं (1981), रघुवीर सहाय की कविताएं दूसरा सप्तक (1951) में भी संग्रहीत हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (1927) की कविता यात्रा में कई मोड़ आये हैं। आरंभ में उन पर नयी कविता की व्यक्तिवादी धारा का प्रभाव था, बाद में वे प्रगतिशील काव्यधारा की ओर झुके। सर्वेश्वर की कविताओं में एक प्रकार की निजता और आत्मीयता हमेशा रही है। वे सामाजिक जागरूकता के कवि हैं और सामाजिक यथार्थ के विभिन्न पक्षों को अपनी कविताओं का विषय

बनाते हैं परंतु संवेदना और विचार दोनों दृष्टियों से उनकी कविताओं में वह गहराई नहीं आ पाई जो हम रघुवीर सहाय की कविताओं में पाते हैं। सर्वेश्वर की कविताएँ अधिक सरल और संप्रेषणीय हैं, परंतु यह सरलता कई बार सपाटता में भी बदल जाती है। सर्वेश्वर का 'तीसरा सप्तक' (1959) के कवि हैं। उनका पहला संग्रह काठ की घंटियाँ (1959) में भी कविताएं संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त गर्म हवाएँ (1969), जंगल का दर्द (1976) आदि प्रमुख काव्य संग्रह हैं।

केदारनाथ सिंह (1932) भी तीसरा सप्तक के कवि हैं। तीसरा सप्तक के अतिरिक्त उनकी कविताएँ 'अभी बिल्कुल अभी' संग्रह में संकलित हैं जो 1960 में प्रकाशित हुआ था। इसके बीस साल बाद 'जमीन पक रही है' (1980) नामक नया काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार, 'केदारनाथ सिंह का काव्य संसार आज के भारतीय समाज के प्रति गहरी संवेदनात्मक उन्मुखता या लगाव प्रमाणित करने वाला संसार है।' केदारनाथ सिंह भी उन कवियों में हैं जिन पर नयी कवित्त की नकारात्मक प्रवत्तियों का प्रभाव लगभग न के बराबर रहा है। यही कारण है कि केदारनाथ सिंह आज भी उतने ही सक्रिय, सृजनशील और सार्थक नजर आते हैं। केदारनाथ सिंह की काव्य यात्रा धीरे–धीरे नयी कविता की व्यक्तिवादी धारा से मुक्त होती हुई जनपक्षीय प्रगतिशील धारा की ओर बढ़ती जा रही है। केदारनाथ सिंह बिंबों को काव्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानते रहे हैं। काव्य भाषा की दृष्टि से भी उनकी कविता में ताजगी, पारदर्शिता और सजर्नात्मकता के दर्शन होते हैं। उनके नवीनतम काव्य संग्रह हैं : यहाँ से देखो और अकाल में सारस ।

श्रीकांत वर्मा (1931) का पहला काव्य संग्रह 'भटका मेघ' (1957) है जिसमें कवि का धरती और मनुष्य के प्रति लगाव व्यक्त हुआ है। लेकिन बाद के संग्रहों में उनमें व्यक्तिवादी प्रवत्ति प्रबल होती गई है। मध्यवर्ग के व्यक्ति की आत्मबद्धता, निराशा, विफलता, पराजय और अपराधबोध के भावों को श्रीकांत वर्मा ने अपनी कविताओं में अत्यंत तीखेपन से व्यक्त किया है। श्रीकांत वर्मा के काव्य में वक्तव्य और सपाटबयानी की प्रमुखता है जो नयी कविता के बाद की प्रमुख विशेषता है। 'भटका मेघ' के अतिरिक्त प्रमुख काव्य संग्रह हैं : दिनारंभ (1967), माया–दर्पण (1967), जलसाघर (1973), मगध, गरूड़ किसने देखा है (1987) ।

बोध प्रश्न –4

1. नयी कविता की भाषा की निम्नलिखित विशेषताओं में से जो सही हो उस पर (√) सही का चिह्न लगाइए।
   क) नयी कविता की भाषा बोलचाल की भाषा के आदर्श को स्वीकारती है। ( )
   ख) नयी कविता की भाषा में रोमानियत का प्रभाव अधिक है। ( )
   ग) नयी कविता की भाषा में बिंब विधान पर अधिक बल दिया गया है। ( )
   घ) नयी कविता की भाषा छायावाद के अधिक नजदीक है। ( )

2. नयी कविता में प्रयुक्त पौराणिक प्रतीकों की विशेषता लगभग पाँच पंक्तियों में व्यक्त कीजिए।

   .....

   .....

.....

.....

3. नयी कविता के कुछ प्रमुख कवियों और कविता पुस्तकों के नाम नीचे दिये गये हैं। जो कविता पुस्तक जिस कविद्वारा रचित हो उसे मिलाइए।

पुस्तक का नाम	**कवि का नाम**
1) आत्महत्या के विरुद्ध	क) केदारनाथ सिंह
2) भटका मेघ	ख)धर्मवीर भारती
3) अभी बिल्कुल अभी	ग)श्रीकांत वर्मा
4) चक्रव्यूह	घ)रघुवीर सहाय
5) अंधायुग	ङ)कुँवरनारायण

अभ्यास

1. नया कविता में व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को किस रूप में ग्रहण किया गया है? स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

2.12 सारांश

- इस इकाई में आपने प्रयोगवाद और नयी कविता नामक काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य की ये दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। प्रगतिवाद के बाद उभरी इन काव्य–प्रवृत्तियों का संबंध तत्कालीन परिस्थितियों से है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मध्यवर्ग में उभरी आकांक्षाओं, आशाओं और निराशाओं की अभिव्यक्ति ही इन काव्य प्रवृत्तियों में हैं। दोनों काव्य धाराओं पर यद्यपि व्यक्तिवादी अंतर्मुखी काव्य प्रवत्तियों का प्रभाव अधिक है, लेकिन इन धाराओं में ऐसे कवि भी सक्रिय रहे हैं जिन पर व्यक्तिवादी विचारधाराओं का प्रभाव नहीं था, और जिन्होंने इनका दृढ़तापूर्वक विरोध भी किया है। शमशेर और मुक्तिबोध इनमें प्रमुख हैं।

- प्रयोगवाद का आरंभ 'प्रतीक' (1947) के प्रकाशन से और नयी कविता का आरंभ 'नयी कविता' (1954) पत्रिका के प्रकाशन से माना जाता है। प्रयोगवाद में विषयवस्तु की अपेक्षा कविता के कलापक्ष पर विशेष बल दिया गया है। किसी विचारधारा विशेष के प्रति पक्षधरता को अनावश्यक माना गया तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्व को स्वीकार किया गया। प्रयोगवादी कवि का कविता संसार यद्यपि मध्यवर्ग के जीवनानुभवों तक ही सीमित था परंतु उसने अपने सीमित अनुभवों को संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। प्रकृ ति के प्रति भी उसमें गहरा लगाव था। नारी के प्रति उसकी दृष्टि यथार्थपरक थी। प्रयोगवाद ने भाषा में बोलचाल को महत्व दिया और छंदमुक्तता पर बल दिया। उसका आग्रह बिंबात्मकता की ओर था। प्रयोगवाद का प्रवर्तक अज्ञेय को माना जाता है।

गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, शमशेर, मुक्तिबोध, नरेश मेहता आदि प्रमुख प्रयोगवादी कवि हैं।

- नयी कविता प्रयोगवाद का विकास है। यद्यपि नये कवियों ने काव्य को प्रयोग का विषय नहीं माना परंतु व्यक्ति की स्वतंत्रता, वाद–विशेष का विरोध नयी कविता की भी विशेषता रही है। यह अवश्य है कि नयी कविता में प्रगतिशील धारा का भी प्रभाव रहा है और कई कवियों पर व्यक्तिवाद का प्रभाव रहा है तो कई कवियों पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव था। नयी कविता पर शीत युद्धीय विचारधाराओं का विशेष असर था। इसी कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता, जनता को भीड़ समझना, मानव की लघुता को महिमामंडित करना, वैयक्तिक अनूभूति को ही प्रामाणिक मानना, इतिहास और परंपरा के बजाय क्षण के बोध को ही सार्थक समझना, नयी कविता की खास पहचान हैं। नयी कविता पर अस्तित्ववाद और आधुनिकतावाद का भी असर रहा है। शिल्प की दृष्टि से नयी कविता में बोलचाल की भाषा, बिंबात्मकता, पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग अर्थ की लय आदि का विशेष आग्रह रहा है। नयी कविता में यद्यपि अनास्था, निराशा. विफलता, कुंठा, टूटन जैसे भावों की प्रधानता रही है परंतु यह हमारे सामाजिकयथार्थ की ही मध्यवर्गीय अभिव्यक्तियाँ थी। मुक्तिबोध जैसे कवि कम थे, जिन्होंने इन मध्यवर्गीय भावनाओं पर आत्मसंघर्ष द्वारा विजय प्राप्त की। नयी कविता ने कई प्रमुख कवि और काव्य पुस्तकें दी हैं। अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध के अतिरिक्त धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, बालकृष्ण राव, कुँवरनारायण, केदारनाथ सिंह, दुष्यंत कुमार, श्रीकांत वर्मा, हरिनारायण व्यास, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रयोगवाद और नयी कविता के स्वरूप और विकास का उल्लेख कर सकते हैं।

2.13 शब्दावली

कलावाद : कला, कला के लिए का सिद्धांत अर्थात जो कलाकार यह मानता हो कि कला की रचना का अन्य कोई बाह्य उद्देश्य नहीं होता।

आंतरिक अन्विति : आंतरिक संबद्धता। शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति का अर्थ है शब्द और अर्थ की ऐसी संबद्धता जो स्वाभाविक लगे।

अर्थ खंडों का क्रमिक ग्रंथित आवर्तन–प्रत्यावर्तन : तात्पर्य यह है कि कविता में प्रयुक्त शब्दों से जो अर्थ व्यक्त होते हैं उनमें क्रमबद्धता हो तथा उनमें आवर्तन के कारण अर्थ में लय उत्पत्र हो।

मानव–मूल्य : मानव–मूल्य उन नैतिक मानदंडों को कह सकते हैं जो मनुष्य के लिए आदर्श रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं।

व्यक्तिवाद : एक ऐसा सिद्धांत जो प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्यों और विश्वासों में पूर्ण स्वतंत्रता देने का समर्थन करता है। व्यक्तिवाद व्यक्ति के जीवन में राज्य और समाज के हस्तक्षेप का विरोधी होता है।

प्रकृतवाद : कला और साहित्य का एक ऐसा सिद्धांत जिसका मानना है कि लोगों को और वस्तुओं को ठीक उसी रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिस रूप में वे वास्तव में हैं न कि आदर्श या अप्रकृत रूप में।

रोला और घनाक्षरी : छंद के प्रकार।

लाक्षणिक वक्रता : शब्द के सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ से उत्पन्न वक्रता जिसके कारण काव्य में विशेष अर्थ व्यक्त होता है।
अंतर्ग्रथित : गुंथा हुआ।
पृहणीय : जिसकी इच्छा की जाये।
आधुनिकतावाद : आधुनिकता से संबंधित सिद्धांत अर्थात् जो पूंजीवादी विकास से पूर्व के विचारों और मान्यताओं से भिन्न हो तथा आधुनिक जीवन से उत्पन्न हुए हों।
अस्तित्ववाद : यूरोप में उत्पन्न एक आधुनिक दार्शनिक मत जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्य के अनुभव महत्वपूर्ण होते हैं और प्रत्येक अपने कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है।
नियतिवाद : एक ऐसा दार्शनिक मत जिसके अनुसार व्यक्ति अपने कार्यों के लिए स्वतंत्र नहीं है, उसके कार्य बाह्य स्थितियों से निर्धारित होते हैं।

2.14 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. क) √ ख)x ग) x घ)√
2. क) x ख) √ ग)√ घ)√
3. स्वयं लिखिए

बोध प्रश्न –2

1. क) x ख) √ ग) x घ)√
2. क) √ ख) x ग) x घ) √ ड.) x

बोध प्रश्न –3

1. ग 2. घ
2. क) √ ख) √ ग)x घ)√

बोध प्रश्न –4

1. क) √ ख)x ग) √ घ)x
2. स्वयं लिखिए
3. 1)घ 2) ग 3) क 4) ड. 5) ख

अभ्यास

1. स्वयं लिखिए
2. संकेत :
   क) अज्ञेय व्यक्तिवादी और मार्क्सवादी विरोधी जबकि मुक्तिबोध मार्क्सवादी।
   ख) अज्ञेय सामाजिक यथार्थ का चित्रण कम करते हैं जबकि मुक्तिबोध की कविताओं का यह केंद्रीय विषय है।
   ग) अज्ञेय मुख्यतः प्रकृति से बिंब चुनते हैं जबकि मुक्तिबोध प्रकृति के साथ–साथ सामाजिक जीव से भी बिंबचुनते हैं।
3. स्वयं लिखिए
4. स्वयं लिखिए

2.15 उपयोगी पुस्तकें

1. अज्ञेय : तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।
2. अज्ञेय : दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।
3. अज्ञेय : तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।
4. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
5. डॉ. रामविलास शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
6. अज्ञेय : आधुनिक हिंदी साहित्य, राजपाल एंड संस, नयी दिल्ली।
7. नगेंद्र (संपादक) : हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 3 समकालीन कविता : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 समकालीन कविता : स्वरूप और दृष्टि
    3.2.1 समकालीनता, तात्कालिकता एवं परंपरा
    3.2.2 समकालीन परिवेश एवं सर्जना
    3.2.3 समकालीन कविता एवं आधुनिकता
    3.2.4 समकालीन कविता में यथार्थ से साक्षात्कार
3.3 समकालीन कविता और नयी कविता
3.4 समकालीन कविता का विशाल परिदृश्य (प्रमुख कवि)
3.5 समकालीन कविता की काव्यगत अथवा संवेदनागत प्रवृत्तियाँ
    3.5.1 कविता में जन संघर्ष की यथार्थ छवि
    3.5.2 जन सामान्य के आत्म–विश्वास में आस्था
    3.5.3 आत्म–विस्तार और जीवन विवेक का सौंदर्य
    3.5.4 आधुनिकता के प्रचलित प्रतिमानों को चुनौती
    3.5.5 कविता में राजनीतिक संदर्भो की प्रमुखता
    3.5.6 परिवेश के प्रति गहरी आत्म–सजगता
    3.5.7 अस्वीकृति, विद्रोह और आंदोलनों की अर्थ–ध्वनियाँ
3.6 समकालीन कविता की शिल्पगत प्रवृत्तियाँ
    3.6.1 परंपरागत शिल्प से छुटकारे का प्रयास
    3.6.2 काव्य–भाषा
    3.6.3 बिंब, प्रतीक और मिथक
    3.6.4 नवीन काव्य लय
3.7 समकालीन कविता : कुछ और संदर्भ
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
3.11 उपयोगी पस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- समकालीन हिंदी कविता के संपूर्ण परिवेश एवं यथार्थ को पहचान सकेंगी/सकेंगे;
- प्रयोगवाद और नयी कविता से समकालीन कविता का रिश्ता समझ सकेंगी/सकेंगे तथा उनमें समानता–असमानता के तत्वों को पहचान सकेंगी/सकेंगे;
- समकालीनता, तात्कालिकता, आधुनिकता तथा परम्परा का अर्थ और संदर्भ ज्ञात कर सकेंगी/सकेंगे;
- समकालीन कविता की विभिन्न काव्य–धाराओं के विषय में निश्चित अवधारणाओं का उल्लेख कर सकेंगी/सकेंगे;
- समकालीन कविता में आंदोलनों, वादों और प्रवृत्तियों को बारीकी से जान सकेंगी/सकेंगे;
- समकालीन कविता की संवेदना और शिल्प की उपलब्धियों और सीमाओं की चर्चा कर सकेंगी/सकेंगे; और
- तुलनात्मक दृष्टि से समकालीन कविता की मूल्य–दृष्टि के ग्रहण और मूल्यांकन में समर्थ हो सकेंगी/सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप पढ़ चुके हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति के साथ देश में जीवन के हर क्षेत्र में नयी आकांक्षाओं ने जन्म लिया किन्तु आर्थिक–सांस्कृतिक स्वाधीनता के अभाव में देश की इच्छाओं को सही दिशा न मिल सकी। गांधीजी की हत्या के पश्चात् मूल्यविहीन राजनीति का रास्ता खुला दिखाई देने लगा। मूल्यों के विघटन के कारण धीरे–धीरे जनता की उमंगों पर अवसाद के बादल मँडराने लगे। परिणामस्वरूप आस्थावादी जीवन–दृष्टि के स्थान पर अनास्थावादी मूल्य, जीवन और सर्जन में प्रबलता पाने लगे। हिंदी कविता के क्षेत्र में प्रयोगवाद के बाद जन्मी नयी कविता का संपूर्ण आन्दोलन मोह भंग, अवसाद, खिन्नता, श्रम के पराएपन की पीड़ा, आत्म–निर्वासन, अकेलापन, ऊब, विसंगति, विडम्बना, विद्रूपता, अंधेरा, संत्रास, कुंठा, घुटन, अस्तित्व के संकट आदि का भावबोध लेकर आया। लेकिन कविता का यह ताजा दिखाई देने वाला मुहावरा 1960 के बाद बासी महसूस होने लगा। किसी समय में नई लगने वाली राहे जड़ लीकों का रूप लेती हुई अपना आकर्षण खोने लगीं। उधर राजनीति में भी एक खौलता परिवेश दृष्टिगत हुआ। परिणामस्वरूप नयी कविता से अलग पहचान बनानी पड़ी। इस साठोत्तरी कविता को नया नाम दिया गया–'समकालीन कविता। समकालीन कविता के केन्द्र में मामूली आदमी की पीड़ा और शक्ति, स्थितियों और मनःस्थितियों की टकराहट, परिवेश की पुकार तथा स्थापित व्यवस्था की मूल्यांधता से विद्रोह और बगावत के तत्त्व प्रमुख हो गए। इस कविता में संवेदना, काव्य–भाषा, प्रतीक, मिथक, बिंब आदि के स्तरों पर बुनियादी परिवर्तन घटित हुआ।

3.2 समकालीन कविता : स्वरूप और दृष्टि

समकालीन कविता को नयी कविता के बाद की 'विद्रोही कविता' भी कहा जाता है। काल चेतना के प्रति सजग आलोचक ही कविता को 'साठोत्तरी कविता' कहना अधिक संगत मानते हैं। ऐसे भी आलोचक हैं जो कथ्य और संवेदना दृष्टि से समकालीन कविता को 'संपूर्ण यथार्थ' की कविता कहना अधिक उचित समझते हैं। समकालीन कविता का दावा है कि वह न तो भावना मात्र है न कल्पना का अतार्किक आधार। मूलतः यह कविता विचारों के गहरे तनावों दबाओं से विवश हो कर रची जाती है। जीवन से उपजी स्थितियों का तनाव समकालीन कविता में इतना अधिक बढ़ गया है कि कवि स्वयं से ही लड़ कर लहू–लुहान दिखाई देता है। उसकी कविता खुद से, अपने परिवेश से मुठभेड़ करती कविता है। व्यापक अर्थों में कह सकते हैं कि परिवेश ही इस काव्य सर्जना की मूल प्रेरणा है। यहाँ महामानव और लघु मानव की बहस को समाप्त करता हुआ सामान्य मानव केन्द्र में आ गया है। वस्तुतः हर युग की कविता अपने युग के मनुष्य को परिभाषित करने की कोशिश करती है। इसलिए कविता या सृजनकर्म में निरंतर परिस्थितियों घात–प्रतिघात से बदलती हुई मनोभूमिका का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। नयी कविता का युग नेहरू युग की राजनीति का दस्तावेज है तो समकालीन कविता में चीन–पाकिस्तान युद्ध की ध्वनि और गुर्राहट तथा लाल बहादुर शास्त्री, इन्दिरा गांधी और उनके बाद के युग की चेतना का यथार्थ विस्फोट है। रचना अपने युग के यथार्थ की टकराहट से ही राह बनाती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि समकालीन कविता अपने परिवेशगत यथार्थ की ईमानदार अभिव्यक्ति है। इस युग के मनुष्य के भीतर पैठे संघर्ष, द्वंद्व, तनाव, आत्म–मंथन, उत्पीड़न, शोषण से उत्पन्न दर्प, व्यंग्य, विद्रूप, टूटते हुए मूल्यों और गलते सपनों की चीख इस कविता की संवेदना के रेशे–रेशे में बिंधी हुई है। एक प्रकार से आज के मामूली आदमी का हाड़ फोड़ कर निकला हुआ दर्द ही रचनात्मकता में ढल कर समकालीन कविता के स्वरूप को निर्मित करता है। किन्तु यह समझना भूल होगी कि समकालीन कविता में पश्चिम के आत्महत्या के दर्शन वाला अस्तित्ववादी काव्य–मुहावरा सक्रिय है। यह कविता निराशा, अनास्था, गलते मूल्यों की कविता अवश्य है पर यह मूल्यों के स्तर पर अनास्थावाद की महत्व प्रतिष्ठा नहीं करती। अपनी दिशा और दृष्टि में यह नयी पीढ़ी के अनास्थावादी मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध कविता है।

3.2.1 समकालीनता, तात्कालिकता एवं परम्परा

समकालीन कविता मात्र **सांप्रतिक कविता** का पर्याय नहीं है। यहाँ समकालीनता का अर्थ है सन् 1960 के बाद की कविता। इस संदर्भ में 'समकालीन' शब्द को 'समसामयिक' के पर्याय रूप में ग्रहण नहीं किया जाता क्योंकि अगर ऐसा अर्थ लिया जाए तो प्रत्येक कविता, अपने समय में समसामयिक होगी। इसी तरह इस शब्द से 'तात्कालिकता' का अर्थ भी नहीं लिया जाता है। मूलतः यह काल (समय) को अपने से पहले की कविता की तुलना में ज्यादा सतर्कता, प्रखरता और चौंकन्नेपन के साथ ग्रहण करती है। इसी सतर्कता के कारण समकालीन कविता अपने समय के प्रमुख अंतर्विरोधों, विरोधाभासों, द्वंद्वों और विसंगतियों की कविता है। कवि को यह मालूम है कि कष्ट और शोषण का वास्तविक रूप क्या है और उनका कारण क्या है? वह उन्हें जीवनानुभवों से पहचान कर लिखता है। वह 'कल्पित' और अद्वितीय के लिए संघर्ष न कर

साधारण जन के लिए संघर्ष करता है। सामाजिक–राजनीतिक स्तरों पर क्षुब्ध कवि ठोस यथार्थ के अनुभव को कविता लिखता है। फलतः समकालीन कविता 'जो हो रहा है' उसका सीधा खुलासा है। इसलिए इसे वर्तमान से सीधे साक्षात्कार की कविता भी कहा जाता है क्योंकि इसमें नेहरू युग के बाद के लड़ते–झगड़ते, दुखद–सकते, तड़पते–बौखलाते, सोचते–झींकते आदमी का परिदृश्य है। इस परिदृश्य को समकालीन कविता के प्रमुख कवि धूमिल मुकम्मल रूप में प्रस्तुत करते हैं। 'संसद से सड़क तक' नामक उनके काव्य–संकलन की प्रसिद्ध कविता 'मोचीराम' की पंक्तियाँ हैं –

मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है!
जो मरम्मत के लिए खड़ा है।

उपर्युक्त मनोभूमिका को बड़े ही सजीव बिंब के साथ प्रस्तुत करती हैं। समकालीन जीवनानुभव की त्रासदी यहाँ क्षण के रूप में न आकर काल प्रवाह के रूप में प्रस्तत हुई है। इसी विशेषता के कारण समकालीन कविता में सामास्य या क्लासिक पूर्णता नहीं है। अपने मूल अनुभव में यह आघातों और सूचनाओं के विस्फोटों की कविता है, मृदुल दल वाले कोमल किसलय नहीं, यहाँ विचार की खुरदरी कठोर चट्टानें हैं। संघर्षों का अंधड़, उपहास, व्यंग्य और राजनीति का नरक है। अपने खास तेवर में यह अपनी परिस्थितियों से झगड़ते–जूझते आदमी की कविता है। वस्तुतः यह नयी कविता की परम्परा के सहज विस्तार और विकास की कविता है। कवि ने इसमें परम्परा की लीकों को छोड़ा है और उसके लोक–स्वर को आगे बढ़ाया है। इसीलिए समकालीन कविता के कवि अज्ञेय का मार्ग छोड़कर, मुक्तिबोध का मार्ग संकल्प के साथ ग्रहण करते दिखाई देते हैं।

3.2.2 समकालीन परिवेश एवं सर्जन

समकालीन परिवेश 'सशस्त्र राजनीति' और 'सशस्त्र मनोदशा' का वातावरण बनाता है। एक तरह की हिंसा और घृणा मानव वृत्ति में पनप रही है। इस परिवेश के भीतर जन्मा साहित्य छापामार मनोवृत्ति का साहित्य है जिसमें सामाजिक क्रांति का एक दरवाजा नक्सलपंथ की ओर खुलता है। सामाजिक मूल्यों के लिए ये सभी रचनाकार गांधी, नेहरू, इन्दिरा, जयप्रकाश, राममनोहर लोहिया आदि किसी को आदर्श नहीं मानते। चे गुयेवारा, माओ, हो ची मिन्ह, मार्क्स, लेनिन, कोहन वेंदो आदि की विचारधारा ही इस कविता का आदर्श है। इन्हीं के विचारों को ले कर यह सृजन एक क्रांतिकारी मानवमूर्ति गढ़ता है इसमें अब वह गुरिल्ला मनःस्थिति भी बरकरार है जो 1970 के बाद तीव्र हुई है। भारत में इसी अवधि में नक्सलपंथी आंदोलन की क्रांतिकारिता का तूफान आया था। बंगाल, असम, बिहार, आंध्र, केरल और देश के अन्य भागों में किसी न किसी रूप में सशस्त्र कार्रवाई को बढ़ावा मिला। कुल मिलाकर इस परिवेश से व्यवस्था–विद्रोह युग का जन्म हुआ। मार्क्सवादी दलों ने 'प्रतिबद्ध कविता' का वातावरण बनाया। सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि इस कविता में पुनर्जीवित किए गए। सामंतवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध जन आंदोलन उठे और पुराने साम्राज्यवादी ढाँचे को तोड़ने का हर संभव प्रयास किया गया। यह विचार खुलकर सामने आया कि अधिकारी तंत्र और लालफीताशाही को बढ़ावा देने वाली और विभाजनकारी राजनीति को अपनाने वाली व्यवस्था को लोकतंत्र नहीं कहा जा सकता। पश्चिम से तकनीक उधार लेकर जो पश्चिमीकरण हुआ उसने हमारे अर्थतंत्र की कमर तोड़ दी। देश के भीतर भ्रष्टाचार और लूट ने लोकतंत्र में निराशा को जन्म दिया। देश में सफेदपोश उपभोक्तावादी संस्कृति की जड़ें मजबूत हुईं और शहरों ने गाँव के शोषण पर जीना शुरू कर

दिया। यह शहरीकरण और पश्चिमीकरण ही आधुनिकीकरण का पर्याय बन गया। इस दिखावटी आधुनिकीकरण को असांस्कृतिकीकरण तथा अवमानवीकरण का नाम दिया गया। इसी परिवेश के भीतर से बहुत से आन्दोलन फूटे जिनमें प्रमुख हैं– समकालीन कविता, अकविता, किसिम–किसिम की कविता, पोस्टर कविता, विचार कविता, युयुत्सावादी कविता, दिगंबरी कविता, विद्रोही कविता, जन कविता आदि।

उपर्युक्त राजनीतिक और व्यवस्थापरक परिवेश के अतिरिक्त महँगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, कुलकवाद, परिवारवाद, प्रांतीयतावाद, व्यक्तिवाद और भोगवाद ने जीवन के अंतर्विरोधों के लिए आग में घी का काम किया। परिणामस्वरूप समकालीन कविता के सभी नए पुराने कवियों में व्यवस्था–विरोध का स्वर प्रबल हो गया। 'चुनाव प्रहसन' नामक कविता में नागार्जुन ने स्पष्ट शब्दों में कहा –

हरिजन, गिरिजन, नंगे भूखे हम तो डोलें वन में
खुद तुम रेशम साड़ी डाटे उड़ती फिरो गगन में
महँगाई की सूर्पनखा को ऐसे पाल रही हो
शासन का गोबर जनता के सिर पर डाल रही हो।

यहाँ जनता का दर्द परिवेश की तड़प बनकर कविता बन गया है। 'अकविता' के एक कवि सौमित्र मोहन ने 'लुकमान अली' नामक लंबी कविता में लिखा है –

लुकमान अली के लिए स्वतंत्रता उसके कद से केवल तीन इंच बड़ी है।
वह बनियान की जगह तिरंगा पहन कर कलाबाजियाँ खाता है।
वह चाहता है कि पाँचवें आम चुनाव में बौनों का प्रतिनिधित्व करे।

उन्हें टाफियाँ बाँटे।
जाति और भाषा की उन्हें कसमें खिलाए
वह आज, नहीं कल, नहीं तो परसों, नहीं तो किसी दिन
फ्रिज में बैठकर शास्त्रों का पाठ करेगा।

आजादी के बाद की विषमता, विद्रूपता का यथार्थ ही समकालीन कविता की केन्द्रीय संवेदना रहा है।

3.2.3 समकालीन कविता और आधुनिकता

धूमिल, श्रीकांत वर्मा, जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश वाजपेयी, केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय, उदय प्रकाश, अरुण कमल आदि कवियों का सृजनकार्य साक्षी है कि इस सृजन में आधुनिकता एक थकी हुई दृष्टि का पर्याय बन गई है। जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है, आज आधुनिकता का सामान्य अर्थ हो गया है – पश्चिम की नकल, तकनीकी गुलामी यानी पश्चिमी पराधीनता का सीधा स्वीकार। इसलिए समकालीन कविता का उद्देश्य इस आधुनिकता की दृष्टि का सीधा विरोध है। इस कविता में सहज और सामान्य आदमी की भारतीय अस्मिता, स्वाभिमान और शक्ति की महत्व–प्रतिष्ठा है। कविता के नायक अब मोचीराम हो जाते हैं और 'नेतराम' को कोई नहीं पूछता। स्थिति के यथार्थ को कहने–जानने में कवि कल्पना के तिलिस्म से दूर होकर कहता है

कि वह जीवन के हर क्षेत्र के नरक का साक्षी है। कविता में वह समय और समाज के इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र का हाशिया प्रस्तुत करता है। उसके सामने एक ओर तो अकेले मनुष्य, अव्यवस्थित समाज और परायेपन की समस्या का भीषण रूप है तो दूसरी ओर साम्राज्यवाद टकराहट तीव्र हुई है। अब 'जनतंत्र', 'स्वतंत्रता' और 'समाजवाद' का वैचारिक त्रिकोण कायम हुआ है। राष्ट्रीयता का अर्थ भी आर्थिक, राजनीतिक स्वतंत्रता की ओर झुक गया है। फलतः आधुनिक जीवन–मूल्य और आधुनिकता, वर्तमान–बोध और समसामयिकता एक द्वंद्वात्मक स्थिति के रूप में उपस्थित हुए हैं।

विश्व–पूँजीवादी व्यवस्था में प्रौद्योगिकी (टैक्नॉलॉजी) का वास्तविक लाभ पूँजीपति वर्ग का मिला। श्रमिक तो इस प्रक्रिया में माध्यम भर रहा। दुनिया की इस व्यस्था के साथ चलने वाला हर देश आधुनिकीकरण की इस यंत्रणा से ग्रस्त होता गया। इसी आधुनिकता और आधुनिकीकरण के प्रभाव ने मनुष्य में आत्म–पराएपन (Self-alienation),अमानवीयकरण (dehumanization) को जन्म दिया। हिन्दी की समकालीन कविता में धूमिल की कविताएँ इसी परिदृश्य का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। श्रीकांत वर्मा 'मायादर्पण' और 'जलसाघर' जैसे–जैसे काव्य–संग्रह की कविताओं में इसी स्थिति से जूझते है। बीसवीं शताब्दी के मनुष्य का यही 'घाव' राजकमल चौधरी की कविताओं में 'कंकावती' की शक्ल ले लेता है। धूमिल प्रश्नानुकूल मुद्रा में पूछते हैं –

क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है –
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है।
('बीस साल बाद' – 'संसद से सड़क तक')

राजनीतिक स्थितियों की अर्थहीनता इसी संग्रह की 'पटकथा' नामक कविता में व्यक्त होती है –

दरअसल अपने यहाँ प्रजातंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है
x x x x
अपने यहाँ संसद
तेल की वह घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है

(पटकथा)

अपनी लंबी कविता 'पटकथा' में धूमिल ने समकालीन हिन्दुस्तान की विसंगतियों और विडम्बनाओं का 'असली चरित्र' प्रस्तुत कर दिया है। कवि ने 'संस्कृति', 'स्वतंत्रता', 'संसद', 'आजादी', 'आस्था', 'शांति', 'भाषा', 'कानून', 'जनतंत्र', 'त्याग', 'मनुष्यता', 'झंडा' आदि शब्दों की अर्थवत्ता को खोजे जाने और इनकी भीतरी नियति का भंडाफोड़ कर दिया है। वे घोषित करते हैं कि 'हर ईमान का एक चोर दरवाजा है' और आदमी की हालत यह है कि –

सड़कों में होता हूँ
बहसों में होता हूँ
रह–रह कर चहकता हूँ
लेकिन हर बार वापस घर लौटकर
कमरे के अपने एकांत में
जूते से निकाले गए पाँव सा महकता हूँ।

चूंकि समकालीन कवि का काम है स्थिति का खुलासा, अतः समकालीन कविता में आधुनिकता का अर्थ है– वास्तविकताओं से सीधा साक्षात्कार ।

3.2.4 समकालीन कविता में यथार्थ से साक्षात्कार

समकालीन कविता को यथार्थ की द्वंद्वमूलक गतिशीलता का इतिहास कहा जा सकता है। मुक्तिबोध और नागार्जुन, सर्वेश्वर और रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही और नरेश मेहता, धूमिल और केदारनाथ सिंह से लेकर उदय प्रकाश और मंगलेश डबराल तक की कविता यात्रा का मुक्त और संभावनापूर्ण चित्र है। यथार्थ को आत्मग्रस्त, कुंठित और रुग्ण मानसिकता से न अपनाकर समकालीन कवियों ने स्वरूप दृष्टि की वस्तुपरकता से अपनाया है। अमूर्त को मूर्त बनाने की कोशिश का नतीजा यह हुआ कि इस यथार्थ पर हम भरोसा कर सकते हैं। मुक्तिबोध ने ठीक कहा था यथार्थ के तत्व परस्पर संश्लिष्ट या गुंफित होते हैं और पूरा यथार्थ स्थिर नहीं वरन गतिशील होता है। 'आज की कविता किसी न किसी प्रकार से अपने परिवेश के साथ द्वंद्व की स्थिति में उपस्थित होती है जिसके फलस्वरूप यह आग्रह दुर्निवार हो उठता है कि कवि–हृदय द्वंद्वों का भी अध्ययन करें। अर्थात वास्तविकता में बौद्धिक दृष्टि द्वारा भी अंतःप्रवेश करें और ऐसी विश्व–दृष्टि का विकास करें जिससे व्यापक जीवन–जगत की व्याख्या हो सके।'

यह अनुभव समकालीन कविता के बारे में एकदम सत्य है। समकालीन कविता की पृष्ठभूमि में गजानन माधव मुक्तिबोध की सामाजिक चिंताएँ और सरोकार तथा नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और शमशेर बहादुर सिंह की कविता के प्रगतिशील तत्त्व है। ध्यान देने की बात यह है कि समकालीन यथार्थ को समझने–समझाने का ढंग सभी कवियों का अलग–अलग है। समकालीन यथार्थ कुँवरनारायण की कविता में वही नहीं हैं जो नागार्जुन की कविता में है। कुँवरनारायण में समाज के यथार्थ को रचने का ढंग शांत और आत्मदीप्त है, नागार्जुन में व्यंग्यपरक और उत्तेजक। रघुवीर सहाय यथार्थ से आत्मीय संवाद करते हैं तो केदारनाथ सिंह उसे निरन्तर स्थितियों के केन्द्र में रखकर परखते है। शमशेर यथार्थ का कविता में अतिक्रमण करते है और त्रिलोचन इतिहासबोध से फैलाकर रचते हैं।

3.3 समकालीन कविता और नयी कविता

विचार करने की बात यह है कि समकालीन कविता 'नयी कविता' का ही विस्तार है या उसकी नयी कविता से कोई अलग पहचान है। समकालीन कविता में यथार्थ की कई धाराएँ टकरातीं, कोलाहल करतीं सक्रिय हैं। इनके अनेक रूप और स्तर हैं। स्वयं नयी कविता एक सी नहीं है, उनमें अनेक धाराएँ और प्रवृत्तियाँ हैं। मुक्तिबोध की कविता यथार्थ की जिस गतिशीलता के लिए चिंतित है उसी के लिए रामदरश मिश्र, श्रीराम वर्मा, रमेशचन्द्र शाह, नंद किशोर आचार्य,

लीलाधर जगूड़ी तथा अरुण कमल जैसे कवि चिंतित दिखाई देते हैं। स्वयं सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा और विजयदेव नारायण साही की कविता में सामाजिक सरोकारों की गहरी तड़प है। इसलिए यह कविता गतिशीलता को बढ़ा रही है। इसका मुख्य बल जीवन के बहु–स्तरीय, बहु–आयामी यथार्थ की पकड़ पर है।

बोध प्रश्न– 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. समकालीन कविता में सक्रिय बदलाव की प्रमुख स्थितियों पर पाँच पंक्तियों में विचार कीजिए।

   .....

   .....

   .....

2. समकालीन कविता 'सम्पूर्ण यथार्थ को व्यक्त करने वाली है।' इस कथन पर तीन पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

3. सही (√) गलत (x) का निशान लगाकर बताइये कि समकालीन कविता किस तरह के मनुष्य को सामने लाती है?

   (i) महामानव (ii) लघुमानव (iii) सामान्य मानव

4. समकालीन कविता के संवेदनात्मक तत्त्वों पर दो पंक्तियों में विचार कीजिए।

   .....

   .....

   .....

5. समकालीनता से क्या तात्पर्य है? इसे कल्पित अनुभवों की कविता क्यों नहीं कहा जाता है? चार पंक्तियों में लिखिए।

   .....

   .....

   .....

6. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग पाँच पंक्तियों में दीजिए –

   क) समकालीन कविता में परिवेश की विसंगतियाँ ही व्यक्त हुई है।

   .....

   .....

   .....

ख) समकालीन कविता में आधुनिकता की दृष्टि का अस्वीकार क्यों है?

.....

.....

.....

.....

ग) समकालीन कालीन कविता में यथार्थ की स्थिति पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

3.4 समकालीन कविता का विशाल परिदृश्य (प्रमुख कवि)

अज्ञेय के काव्य–मुहावरे के चुक जाने के बाद नयी कविता का युग भी समाप्त हो गया। अज्ञेय ने कविता के लिए एक सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण किया था पर वह भी इतिहास की वस्तु बन गया। उनके समानांतर प्रगतिशील यथार्थ की कविताधारा चल रही थी और उसी में से आधुनिकतावादियों के व्यक्तिगत स्वांतत्र्य, अनुभूति की अद्वितीयता, क्षणवाद, नव्य रहस्यवाद, शीत युद्ध के प्रभाव आदि को छोड़कर नयी राह बनाई गई। प्रगतिशील विचारधारा को केन्द्र में रखकर महत्वपूर्ण कविता रची गयी।

एक प्रकार से समकालीन कविता निराला–मुक्तिबोध की दिशा–दृष्टि का नया विस्तार है, जिसमें प्रतिगामी शक्तियों से निरंतर जूझने की चाह है। समकालीन कविता में कई धाराएँ सक्रिय हैं। इनमें प्रमुख हैं –

1) **प्रगतिशील यथार्थ की धारा** : इसमें मुक्तिबोध, त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, धूमिल, श्रीकांत वर्मा, कुमार विमल, रमेशचन्द्र शाह, मंगलेश डबराल, प्रयाग शुक्ल, गिरधर गोपाल, लीलाधर जगूड़ी, अरुण कमल आदि कवियों का विशाल कवि मंच है।

2) **प्रयाग के 'परिमल' विचार मंच से जुड़े कवि** : लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही,
धर्मवीर भारती आदि का सृजन भी समकालीन कविता की एक महत्वपूर्ण धारा का अंग है।

3) **तार सप्तक के कवियों** में गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेहता, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुंत माथुर, हरि नारायण व्यास आदि ने भी समकालीन जीवन के यथार्थ को खास ढंग से परिभाषित किया है।

4) **स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े कवियों** में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि की राष्ट्रीय– सांस्कृतिक काव्यधारा भी इस काल में सक्रिय रही है।

5) **नवगीत आंदोलन** भी समकालीन कविता की एक धारा है जिसमें ठाकुर प्रसाद सिंह, रमानाथ अवस्थी, रमेश रंजक, चंद्रदेव सिंह, श्रीकांत जोशी, राजेन्द्र किशोर, हरीश मदानी, परमानन्द श्रीवास्तव, विजय किशोर मानव आदि का नाम उल्लेखनीय है।

9) **अकविता आंदोलन** का समकालीन कविता आंदोलन में एक महत्वपूर्ण हाशिया है। इसमें जगदीश चतुर्वेदी
चद्रकांत देवताले, श्याम परमार, सौमित्र मोहन, गंगा प्रसाद विमल, राजकमल चौधरी आदि के सृजन का विशेष स्थान है।

7) **विचार कविता** आंदोलन की धारा के कवियों में नरेन्द्र मोहन, हरदयाल, विनय, सुखवीर सिंह, कृष्णदत्त पालीवाल, रमेश दिविक, प्रताप सहगल, कुसुम कुमार आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

8) **समकालीन विद्रोही कविता** की एक अन्य धारा है जिसमें उदय प्रकाश, गोरख पांडेय, विनोद शुक्ल, विनोद भारद्वाज, राजेन्द्र उपाध्याय, मलयज, डॉ. देवराज, ऋतुराज, दुष्यंत कुमार, कुमार विमल, वीरेन्द्र कुमार जैन, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, नंद किशोर आचार्य, श्रीराम वर्मा, कमलेश, वेणु गोपाल, बलदेव वंशी, मणि मधुकर, कन्हैया लाल नंदन, इंदु जैन आदि अनेक कवि हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी कवियों ने बौद्धिक चिंता का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम किया है। इन सभी की काव्य संवेदना में न केवल राजनीतिक भ्रष्टाचार पर तेज टिप्पणियाँ, व्यंग्य–वक्रोक्तियाँ हैं वरन मानवीय सार्थकता के प्रमुख सरोकार भी सक्रिय हैं। समय और समाज के जटिल यथार्थ को समझने के लिए इन सभी काव्यधाराओं, आंदोलनों और प्रवृत्तियों के कवियों ने अपनी गहन संवेदना शक्ति का सार्थक उपयोग किया है। क्रूर विसंगतियों और हादसों के बयानों में समय का सच परी ईमानदारी के साथ मौजूद है। नए बिंबों, प्रतीकों, मिथकों और सपाटबयानी के कथनों ने भाषा की सर्जनशीलता में लोकभाषा की चौकसी का सहज रूप प्रस्तुत किया है। आगे हम समकालीन कविता की मूल प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे ताकि आप इस कविता के स्वरूप को समझ सकें।

3.5 समकालीन कविता की काव्यगत अथवा संवेदनागत प्रवृत्तियाँ

3.5.1 कविता में जन संघर्ष की यथार्थ छवि

समकालीन कविता का कथ्य जन संघर्ष की चेतना को अनेक स्तरों पर सृजित करता है। प्रगतिवादी कवियों की व्यवस्था विरोध की प्रवृत्ति इस काल में विद्रोह का रूप धारण कर लेती है। देश में फैला 'काला–काला परिवेश', 'काली–काली महँगाई' तथा 'काले–काले अध्यादेश' नागार्जन को क्षुब्ध करते हैं। उनके कथ्य में व्यवस्था से संघर्ष का ऐतिहासिक विवेक फूट पड़ता है। केदारनाथ अग्रवाल ने मानव के प्रति प्रकृत राग को नया अर्थ दिया है – उन्हें 'आँख मूंद' पेट पर सिर टेके बैठा आदमी तकलीफ देता है। उनकी काव्यानुभूति में यथार्थ का नया संसार

जन्म लेता है। प्रगतिशील यथार्थ की धारा के सभी कवियों की काव्य–संवेदना एक–दूसरे के काफी निकट है और समय तथा समाज के जटिल यथार्थ को कविता में सामने लाती है। शब्द युद्ध में बदल जाते हैं और कवि कहता है –

साधो, आज मेरे सत की परीक्षा है
आज मेरे सत की परीक्षा है।
बीच में आग जल रही है
उस पर बहुत बड़ा कड़ाह रखा है
कड़ाह में तेल उबल रहा है
उस तेल में मुझे सब के सामने
हाथ डालना है
साधो, आज मेरे सत की परीक्षा है।

('सत की परीक्षा'– विजय देव नारायण साही)

इस कविता में राजनीतिक–सामाजिक परिवेश और विसंगतियों के खौलते यथार्थ की अभिव्यक्ति है। ऐसी ही अभिव्यक्ति धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियों में है –

मैं रोज देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का
एक पुर्जा गरम होकर
अलग छिटक गया है और
ठंडा होते ही
फिर कुर्सी से चिपक गया है
उसमें न दया है
न हया है
नहीं –
अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है। मैंने एक एक को
परख लिया है
मैंने हरेक को आवाज दी है
हर एक का दरवाजा खट–खटाया है
मगर बेकार .....।

यह पूरा यथार्थ इस पीड़ा की अभिव्यक्ति है कि कथनी–करनी से दूर जा पड़ी है। लोकतंत्र या समाजवाद या ऐसी ही अन्य मानवीय मूल्यों और समानता पर आधारित व्यवस्थाएँ मात्र नारा बनकर रह गई है जो भ्रष्टाचार और शोषण तंत्र में ढाल का काम कर रही हैं। इस दृष्टि से समकालीन कविता का दर्शन यथार्थ की सच्चाई में आग का दर्शन है। समकालीन कविता ने स्वच्छंदतावादी–छायावादी काव्य–रुझानों को समूल नष्ट करने की ओर कदम उठाया है। कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, धूमिल, नेहरू युग के अंत के काव्य–मुहावरे को काव्य में परिभाषित करते हैं। इन्हीं के कदमों पर आगे बढ़ती हुई पूरी युवा पीढ़ी की कविता में गुस्सा, खीज और युयुत्सा भर गई है। कवि अराजकता और पूँजीवादी लूट–तंत्र के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं।

इसी दौर में आधुनिकतावादियों और अकवितावादियों ने यौन–क्रांति की कविता भी लिखी थी जो 'चालू मुहावरे' के रूप में ही रही। उसका स्वागत नहीं किया गया। अकवितावादियों की निराशा, हताशा और यौन कुंठाओं को उजागर करने वाली यह कविता इतीहास के पन्नों में ही खो गई। आरंभ में धूमिल, राजकमल चौधरी, श्याम परमार आदि ने अकवितावादियों का साथ दिया था किन्तु जल्दी ही उन्होंने दूसरी राह पकड़ ली। अकेले जगदीश चतुर्वेदी 'इतिहासहंता' काव्य संकलन में अकविता आंदोलन का ध्वज थामे रहे।

3.5.2 जन–सामान्य के आत्म–विश्वास में आस्था

विरोध, विद्रोह और विद्रूपता को प्रमुख स्थान देने वाली समकालीन कविता अनास्थावादी दिखाई देने के बावजूद जन–सामान्य के अखंड विश्वास का रूप है। इसके कवि मानसिक तथा भावनात्मक यथार्थ को वस्तुगत यथार्थ के रूप में देखने का संकल्प करते हैं। व्यक्ति केन्द्रित असहाय आत्म–मुग्धता को इस काव्य में कहीं भी स्थान नहीं है। इसी तरह नयी कविता में स्वीकृत निराशावाद, अस्तित्ववाद, कुंठावाद अथवा यौनवाद आदि को इधर के कवियों ने विधारधारा के स्तर पर ग्रहण नहीं किया है। भारतीय मध्यवर्ग की खिन्नता और अवसाद का चित्रण ये कवि डटकर करते हैं किन्तु खिन्नता और नशा को स्थायी भाव के रूप में प्रतिष्ठित नहीं करते। जनशक्ति की आग से अँधेरा भागता है और इससे पूँजीवाद का अजगर भी थरथराता है। गाथा प्रसंगों, नाटकीय दृश्यालेखों, वक्तव्यों, एकालापों, प्रश्नाकुल संवादों में यह काव्यात्मकता निर्भय होकर प्रवेश करती है। कुमार विकल की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस काल के मनोभाव का प्रतिनिधित्व करती हैं –

जनता एक बहुमुखी तेज हथियार है
जो अकेली गहराइयों को आपस में जोड़ता है

(मिथक/एक छोटी सी लड़ाई)

कुमार विमल की 'एक छोटी सी लड़ाई, विनोद कुमार शुक्ल की 'बाजार की सड़क', चंद्रकांत देवताले की 'रोशनी मैदान की तरफ', लीलाधर जगूड़ी की 'बची हुई पृथ्वी', ज्ञानेन्द्रपति की 'आँख बनते हुए', मंगलेश डबराल की 'पहाड़ पर लालटेन', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'बेहतर दुनिया के लिए', अरुण कमल की 'उर्वर प्रदेश' जैसी कविताओं में जन–जीवन के आत्म–विश्वास को व्यक्त किया गया है। व्यापक अर्थ में कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में जीवनधर्मी लगाव है। वह प्रेम, करुणा, उत्साह, कर्म, सौन्दर्य, साहस, प्रकृति से लगाव, इतिहास बोध, वर्ग चेतना, प्रतिबद्धता, जनपक्ष धरता के साथ विश्वास दृष्टि की कविता है। जीवनधारा का रूप इसका बीजभाव बन कर आया है –

मैं जब लौटा तो देखा
पोटली में बँधे हुए बूटों ने
फेंके हैं अंकुर।

('उर्वर प्रदेश'– अरुण कमल)

3.5.3 आत्म–विस्तार और जीवन विवेक का सौन्दर्य

नया कवि जीवन–यात्रा में कर्म–सौन्दर्य या संघर्ष के सौन्दर्य को महत्त्व देता रहा है। समकालीन कविता ने भी इस कर्म सौन्दर्य को खुलेमन से स्वीकार किया है। इसीलिए वह बासी, जड़ सौन्दर्याभिरुचियों पर प्रहार करते हुए ताजी दृष्टि विकसित करता है। इस सौन्दर्यानुभूति में जीवन की अर्थभूमि का छायावादी संकोच भी नहीं है। वस्तुतः यह समय से सच्चे साक्षात्कार और आत्म–विस्तार की रचना यात्रा हैऔर गहराई में जाकर कहें तो यह कविता–यात्रा निराला की काव्य–परम्परा का प्रकृत सौन्दर्य लिए हुए है। उगता हुआ सूर्य, गीत गाते बच्चे, किरणदल, भूसी की आग, तूस की आग आदि इन कविताओं में अक्सर मौजूद होते हैं। यहाँ कवि प्रार्थना की

मुद्रा में आने पर भी यही कहता है कि उसे शक्ति का सौन्दर्य चाहिए। इस संदर्भ में विजयदेव नारायण साही के 'साखी' नामक काव्य–संकलन से एक कविता दृष्टव्य है –

परम गुरु,
दो तो ऐसी विनम्रता दो
कि अंतहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ
और यह अंतहीन सहानुभूति
पाखंड न लगे।
दो तो ऐसा कलेजा दो
कि अपमान महत्वाकांक्षा और भूख
की गाँठों में मरोड़े हुए
उन लोगों का माथा सहला सकूँ
और इसका डर न लगे
फिर कोई हाथ ही काट जाएगा।

(प्रार्थना : गुरु कबीर दास के लिए)

दिलचस्प बात यह है कि समकालीन कविता के पुराने नए दोनों तरह के कवियों के मन में कबीर के प्रति असीम आस्था का भाव है। यह भी कहा जा सकता है कि इन कवियों के प्रेरणा गुरू ही कबीर दास बने हैं कबीर से प्रेरणा लेने का अर्थ है सामाजिक विकृतियों –ढोंगों को ललकार कर तोड़ने का साहस।

3.5.4 आधुनिकता के प्रचलित प्रतिमानों को चुनौती

इस कविता की एक विशेष प्रवृत्ति है – आधुनिकता के प्रचलित प्रतिमानों को चुनौती के स्तर पर तोड़ने का साहस। यहाँ कवि न तो पश्चिमी अर्थ में 'आधुनिक' होना चाहता है न 'यांत्रिक मानव' और न ही 'खोखला दर का आदमी।' न ही वह 'मरियल पीला बुद्धिजीवी' बनना चाहता है। आधुनिकता के पश्चिमी अस्तित्ववादी मुहावरे से भी वह नफरत करता है। इसलिए समकालीन कविता का रचना–कर्म अपनी जमीन की जड़ों से जुड़ना चाहता है और उसी के भीतर उग कर अपनी गंध फैलाने का आकांक्षी है। मूलतः उसे लोक चिंता और जनमानस की संवेदना से

लगावभरी आधुनिक दृष्टि पसंद है। नागार्जुन अकेलेपन और अनास्था के आधुनिकतावादी दर्शन को तोड़–फोड़ कर चलाना चाहते हैं और सशक्त संघर्षपूर्ण मुद्रा में कहते हैं –

मैं न अकेला कोटि–कोट हैं मुझ जैसे तो
सब को तो अपना–अपना दुख है वैसे तो
पर दुनिया को नरक नहीं रहने देंगे हम।

(पुरानी जूतियों का कोरस)

3.5.5 कविता में राजनीतिक संदर्भों की प्रमुखता

राजनीति इधर की कविता का प्रधान संदर्भ इसलिए है कि सारी जीवन–व्यवस्था, सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचा, आर्थिक नीतियों के नियामक तत्व इसी में से निकलते हैं। आज राजनीति ने जो अमानवीय स्वार्थांधता विकसित की है वह सच्चे सहज मनुष्य के श्रम को निगल रही है। समकालीन कवि इस स्थिति पर कबीराई अंदाज में व्यंग्य करते हैं। नागार्जुन, सर्वेश्वर, धूमिल, मलयज, लीलाधर जगूड़ी, श्रीकांत वर्मा, उदयप्रकाश आदि की कविताओं में राजनीति के इसी नरक से जन सामान्य को उबारने–बचाने की इच्छा व्यक्त होती है। लीलाधर जगूड़ी की 'इस व्यवस्था में' नामक कविता से कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

नौकरी के लिए पढ़कर
सिफारिश से कुर्सी पर चढ़कर
इस दरमियान
मैंने जाना है
जनतंत्र में
बिल्कुल नया जमाना
नागरिकता पर
सबसे बड़ा रंदा थाना है

x x x

कुटुमदारी निबाहते हुए
चारों ओर जो शोर है
इसका जो भी मतलब हो
इस व्यवस्था में
हर आदमी कहीं न कहीं चोर है

x x x

जहाँ एक चढ़ाता है
दूसरा उतारता है
नोट और वोट का तख्ता
पेट से टाँग अड़ाता है
पराजय और निराशा के बीच
आदर्श एक चालाकी है
लूटने के अनुशासन में। पुलिस की तरह

सबकी वर्दी खाकी है।

धूमिल भी इसी परम्परा की शक्तिशाली कविता लिखते हैं –

ओ देश के पोर–पोर में दुखते हुए गूंगे जुगुनू
क्रोध की अकेली मुद्रा में
उफनते हुए सात्विक खून
आ, बाहर आ ...।'
(भाषा की रात – संसद से सड़क तक)

आखिरकार वे यहाँ तक कहते हैं, कि 'लोहे का स्वाद लुहार से नहीं, उस घोड़े से पूछो जिसके मुंह में लगाम है।'

राजनीति ने आजादी के बाद जनता के सुख–स्वप्नों में आग लगा कर जो आतिशबाजी खेली है पूरी समकालीन कविता उस दर्द का सार्थक बयान है। यह एक एतिहासिक हलफनामा है, और समय की डायरी पर लिखी गई एक सच्ची इबारत भी। इस कविता को राजनीतिक चेतना की कविता भी कहा जा सकता है, क्योंकि राजनीति ने जिस–जिस स्तर पर जो ढंग और पाखंड विकसित किए हैं उनमें जन्मी पीड़ा का यह बेबाक बयान बेझिझक भाषा में लिखा साक्ष्य तो है ही, उनके विरूद्ध जन–रुचि जगाने का हथियार भी है।

3.5.6 परिवेश के प्रति गहरी आत्म–सजगता

समकालीन कविता के रचनाकर्म में परिवेश के प्रति गहरे लगाव का भाव निरंतर बढ़ा है। जटिल अराजकता में जीवन को पकड़ने की कोशिश कवि फिकरेबाजी के झटके में न कर अंतःसंघर्ष की मुद्रा में करता है। यह कविता परिवेश के प्रति 'अहसास' और उसकी 'समझ' दोनों है। अपनी संवेदनात्मक एंद्रियता में कवियों ने विचारों और उनके टकरावों को उनके मूल में पकड़ने का प्रयास किया है। धूमिल, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर आदि कवियों को भारतीय समाज में मूल्यों के विघटन के कारण मनुष्य के चारों ओर भीषणता से बढ़ते अंधकार के घिराव का अहसास है। इसलिए कविता भावात्मक स्तर पर नहीं बौद्धिक स्तर पर संयोजित होती है।

काव्यात्मक स्तर पर कविताओं की नाटकीय संरचना में परिवेश की पूरी हिस्सेदारी है। परिवेश का आतंक, भय, विद्रूपता, आत्मनिर्वासन को कवियों ने नए–नए अंदाज में उजागर किया है। कविता के कथ्य में परिवेश का रंग गाढ़ा है। अकेले धूमिल का ही उदाहरण लें तो 'पटकथा', 'मोचीराम', 'राजकमल चौधरी के प्रसंग में', 'अकालदर्शन', 'गाँव', 'प्रौढ़ शिक्षा' जैसी कविताएँ परिवेश का इतिहास–भूगोल पूरी प्रामाणिकता से प्रस्तुत करती है। 'अकाल में सारस' में केदारनाथ सिंह या 'खूँटियों पर टंगे लोग' में सर्वेश्वर परिवेश को ही कविता बनाते दृष्टिगत होते है। परिवेश के साथ तदाकार होने की स्थितियाँ समकालीन कवियों में नयी कविता से कहीं ज्यादा है। परिवेश से तदाकार होने के कारण कविता समकालीन मानव चरित्रों की दुनिया को ठोस रूप–रंगों में, चारित्रिक मुहावरों में व्यक्त कर सकी है। परिवेश की यह सही समझ ही उसकी प्रासंगिकता का ठोस आधार भी बनी है। धूमिल का 'मोचीराम' इस सच्चाई को कहता है–

जो असलियत और अनुभव के बीच
खून के किसी कमजात मौके पर कायर है
वह बड़ी आसानी से कह सकता है
यार तू मोची नहीं शायर है।

यह प्रश्न उठ सकता है कि दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में व्यस्त युवा कवियों से क्या उम्मीद करनी चाहिए। उत्तर होगा कि अपनी त्रासद भूमिका में ज्यादातर कविताएँ जन सामान्य की हालत का साक्षात्कार हैं, भले ही उनमें बड़बोला विद्रोह, आत्मस्फीति या सामान्यीकरणों के चालू मुहावरे हों। समकालीनता पर वक्तव्य देते हुए कविताएँ लंबी हो जाती हैं, पर यह कवि की लाचारी है। समकालीन दृश्यालेख इतनी सूचनाओं से भरा है कि कवि हैरानी में है। इसलिए कवि परिवेश को रचता–रचता एक पैगंबराना स्वर अपना लेता है। कविता का चरित नायक समय की व्यथा–कथा को सुनाता है क्योंकि व्यथा की मार उसे तोड़ रही है।

3.5.7 अस्वीकृति, विद्रोह और आंदोलनों की अर्थध्वनियाँ

समकालीन कविताओं में पूर्व परम्पराओं के लिए अस्वीकृति की मुद्रा है। सभी युवा कवि 'विद्रोही कंठ के पुकार' की कविता लिखते हैं। लेकिन उसके भीतर अपनी पहचान के लिए कवियों ने 'अकविता', 'न कविता', 'सही कविता', 'विचार कविता', 'युयुत्सावादी कविता', 'श्मशानी कविता', 'जन कविता', 'आक्रोशी कविता' आदि कई आंदोलन चलाए हैं। ये आंदोलन बहुत थोड़े–थोड़े समय के लिए ही चल सके हैं क्योंकि कविता के क्षेत्र में हर नए से नया लिखने वाला अपने आपको दूसरे कवियों से एकदम अलग दिखाने की कोशिश में रहता है। यह सिद्धांत भी पेश करता है कि पिछली पीढ़ी के काव्य से उसके काव्य के तत्त्व और रूप अलग हैं। वैचारिक, कलात्मक, मूल्यगत दृष्टिकोण का संवाद सेतु वह पुरानी काव्य पीढ़ी से जोड़ना नहीं चाहता पर शोर मचाने पर भी वह अलग कहाँ है? कहीं न कहीं उसमें मुक्तिबोध, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेहता, भवानी भाई, रघुवीर सहाय, कुँवर नारायण या विजयदेव नारायण साही आदि की गहरी धमक सुनाई देती है। उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल, ऋतुराज आदि कवियों में प्रगतिशील कवियों की परंपरा की ललकार और स्वीकार का भाव है। इतिहास की प्रक्रिया से उत्पन्न विडम्बना का स्वर और राजनीतिक पतन पर अफसोस जो शमशेर, साही और सर्वेश्वर में है वही स्वर इन युवा कवियों में मिलता है। मुक्तिबोध की भाँति आदमी के टूटने की गहरी ट्रेजडी का भाव उदय प्रकाश के 'सुनो कारीगर' और 'अबूतर–कबूतर' जैसे काव्य–संग्रहों में साफ दिखाई दे जाता है। नए काव्य–आंदोलनों से जाहिर है कि समकालीन कविता में मामूली आदमी का गहरा आत्म–विश्वास गैर–रोमांटिक ढंग से व्यक्त हुआ है। मूलतः यह परिवेश और मामूली आदमी के प्रति गहरे लगाव की कविता है।

बोध प्रश्न –2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. समकालीन कविता के विशाल परिदृश्य पर दस पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....
.....

2. समकालीन कविता की चार प्रमुख प्रवृत्तियों पर आठ–पंक्तियों में विचार कीजिए।

.....
.....
.....
.....

3. समकालीन कविता में तीव्र विद्रोह या आग का दर्शन है? चार पंक्तियों में विचार कीजिए।

.....
.....
.....
.....

4. समकालीन कविता में आस्था के स्वर के उदाहरण तीन कविताओं के शीर्षक बताकर दीजिए।

.....
.....
.....
.....

5. 'समकालीन कविता की सौन्दर्यानुभूति में छायावादी अर्थ भूमि का संकोच नहीं है जीवन का मुक्त विस्तार है।' इस कथन को ध्यान में रखकर उत्तर दीजिए (पाँच पंक्तियों में)।

.....
.....
.....
.....

6. समकालीन कविता में राजनीतिक सन्दर्भों की प्रमुखता है। चार पंक्तियों में विचार कीजिए।

.....
.....
.....
.....

7. सही (√) गलत (X) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए –

समकालीन कविता में

क) परिवेश के प्रति उदासीनता ( )

ख) परिवेश के प्रति आत्म–सजगता ( )

ग) परिवेश के प्रति तटस्थता ( )

8. समकालीन कविता के भीतर अपनी पहचान बनाने वाले किन्हीं चार आंदोलनों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

3.6 समकालीन कविता की शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

3.6.1 परंपरागत शिल्प से छुटकारे का प्रयास

शिल्प की दृष्टि से समकालीन कविता का एक मूल्यवान पक्ष यह है कि यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा चमत्कार रहित सहजता का समर्थन करती है। समकालीन कवि कविता को प्रासंगिक बनाने के लिए उसे तथाकथित काव्यत्व से छुटकारा दिलाने की कोशिश करता है। कभी पारंपरिक नियमों और अनुशासनों को चुनौती देकर तोड़ता है तो कभी भाषा बिंब, प्रतीक लय आदि के स्तर पर चतुर वाक्य संयोजन करता है। परम्परागत काव्य रूप – मुक्तक प्रबंध आदि को वह स्वीकार नहीं करता। क्योंकि वह मानता है कि हर समर्थ कवि अपने लिए एक अलग टेकनीक विकसित करता है। जीवन में मूल्यगत विक्षेप का जो भाव आया उसने इस कविता के रूप–विधान पर भीतर–बाहर से असर डाला। अनियमित जीवन को इन कवियों ने अनियमित गद्य की लय में ढाल कर कविता रची। गहन 'काव्यात्मकता' और 'कलात्मकता' का स्थान गद्यात्मकता और विद्रोही सपाटबयानी ने ले लिया। कवि ने प्रगीत के मूड को छोड़कर तल्ख व्यंग्योक्ति और विद्रूप से पूर्ण नाटकीय कविता की सीधे काव्य यात्रा की। इस दृष्टि से अधिकांश कवि मुक्तिबोध की काव्य दिशा की और उन्मुख हुए। कुछ में तो फंतासी (Fantasy) की ओर झुकाव भी दिखाई देता है। अनुभव और विचारों की सघनता–लंबी कविताओं के दौर को सामने लाती है। धूमिल की 'पटकथा' और मोचीराम, राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग' भवानी प्रसाद मिश्र की 'शब्दों के तल्प पर' सर्वेश्वर की 'कुआनो नदी' आदि इस दौर की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

इन लम्बी प्रबन्धात्मक कविताओं के अलावा इस युग में प्रबन्ध काव्य रचनाएँ भी हुईं जिनमें भवानी प्रसाद मिश्र का 'कालजयी', जगदीश गुप्त का 'गोपिका', नरेश मेहता का 'महाप्रस्थान', जगदीश चतुर्वेदी का 'सूर्यपुत्र', विनय का 'एक पुरुष और' आदि उल्लेखनीय हैं।

इस दौरान लिखे गए नवगीतों में पुराने गीतों से संवेदना और शिल्प के स्तर पर बदलाव दृष्टिगत होता है। नवगीतों में लोक संवेदना को लोकभाषा की तद्भवता में उसकी मूल ध्वनि और राग चेतना के साथ ग्रहण किया गया है। गीत में टेक और तर्ज की तरन्नुम का जो आग्रह था

उसे नवगीत ने स्वीकार नहीं किया। नवगीत भाव लय के प्राण रागों का गायन है। इसलिए उसकी प्रकृत भाव चेतना पाठक के प्राणों को छूती है। ठाकुर प्रसाद सिंह, शंभूनाथ सिंह, चंद्रदेव आदि के नवगीतों को इस दृष्टि से देखा जा सकता है।

3.6.2 काव्य–भाषा

समकालीन कविता में यथार्थ का दबाव और यथार्थ से साक्षात्कार भाषा के साथ कविता के नए तरह के संबंध का सूचक है। यह भाषा और समाज के उस रिश्ते की परिचायक है जिसमें भाषा यथार्थ को प्रस्तुत ही नहीं करती उसके छद्म का भी उद्घाटन करती है, अमानवीय शक्तियों के दबाव के विरुद्ध अपने ढंग से कारगर होती है। इस संबंध में लीलाधार जगूड़ी का यह कथन ध्यान देने योग्य है – 'समकालीन कवियों की कविता ने केवल भाषा की शक्ति को नया नहीं बनाया, बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी किया है। यहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं। आम आदमी तक पहुँचने वाला मुहावरा युवा कविता ने रचा बल्कि यों कहें कि आज की कविता आम आदमी की कविता है।'–'आवेग', पृ. 13।

भाषिक प्रक्रिया और काव्य–प्रक्रिया को प्रश्नाकुलता भी लीलाधर जगूड़ी की कविता में दिखाई देती है –

फौजी दस्ते की तरह अंधेरे में
एक भाषा खाइयाँ बदल रही हैं।
और शब्दों को गोलियों की जगह
भर रही हैं
चीजों की व्यवस्था में
तुम्हारा इस तरह गायब हो जाना
मेरे लिखने की भाषा है
अब निरंतर अपने भीतर सुन रहा हूँ खुर–खुर
भाषा को जो आघात पहुँच रहा है
मेरी मरम्मत के बहाने।

काव्य–भाषा के आभिजात्य से मुक्ति का एक जोरदार अभियान धूमिल ने चलाया। उन्होंने पैनी, कटखनी, व्यंग्य प्रधान और सीधी मार करने वाली भाषा में कविता लिखी। 'कविता' और 'भाषा' शब्दों का इस्तेमाल उनकी कविता में बार–बार हुआ है। इससे उनकी रचनात्मक जिम्मेदारी को सजगता प्रकट होती है। उनकी शब्दावली पर गौर करें तो सचमुच वह कहीं एकालाप लगती है, कहीं वार्तालाप, कहीं हलफनामा और कहीं वक्तव्य – एक जागरूक कवि का समकालीन जिंदगी पर दिया गया सार्थक वक्तव्य।

समकालीन कविता की काव्य–भाषा में गुस्सा, नफरत, घृणा, आक्रोश, अन्याय की पीड़ा, विकृत राजनीति से विद्रोह की अर्थच्छायाएँ साफ–साफ उभरी हैं। कलावाद–रूपवाद की काव्य–भाषा से हटकर समकालीन कविता ने भाषा को जनता तक पहुँचाने के लिए भरसक प्रयास किया है। इसलिए वहाँ काव्य–भाषा में स्थानीय रंग की शब्दावली का बहुतायत प्रयोग हुआ है। 'चमरौधा',

'डबरे', 'चूल्हे का कोयला', 'चौका', 'पाला लगी मटर', 'सोहर', 'कठवत' जैसे शब्द कवि की देशी संवेदना के सहज रूप में आते हैं। भाषा में लोक–रंगों की चमक पैदा होती है।

शब्द वाक्य और विराम चिह्नों के स्तर पर भी इस कविता में कहीं–कहीं तोड़–मरोड़ की प्रवृत्ति दिखाई देती हैं जैसे –

1) इतनी उजली
इतनी बलाकाएँ
बोलती इतनी कराकुलें ना
चते इतने मयूर आ
समानों तक
उठी हरी पर दूब
पर
धुनी इतनी रुई
तने नये परवने

–श्रीराम वर्मा

2) देश एक लंगड़ाता हुआ वृद्ध मरीज
देश प्रेम एक अय्याशी का
दिया हुआ महामंत्र। दुखती है कोई कनपटी की नस और
बाजुओं में रक्तपात की इच्छा पनपने लगती है–एक पाखंड

– जगदीश चतुर्वेदी
(एक लंगड़ा आदमी का बयान)

समकालीन कविता ने लोक जीवन के मुहावरे और लोकोक्तियों का समर्थ अनुभव संसार गढ़ने का समर्थ प्रयास किया है। व्यंग्य में गँवई संवेदना का लट्ठमारपन भी वहाँ मौजूद है। 'भाषा में भदेस' के प्रयोग के कारण पारंपरिक सौन्दर्य बोध को भी फटकारा गया है। साथ ही यह कविता भद्दे और विद्रूप शब्दों से एक अर्थवान संसार को निर्मित करती है। भूख की पीड़ा व्यंग्यों और प्रतीकों में मरोड़ के साथ प्रस्तुत होती है –

चूल्हे की राख से
सपने सब शेष हुए।
बच्चों की सिसकियाँ
गीतों पर चढ़ती
छिपकलियों सी बिछल गई

– श्रीकांत वर्मा 'भटका मेघ', पृ. 6

अकविता के कवियों की भाषा में उत्तेजना प्रधान उद्विग्न स्वर मिलता है, चौंकाने वाले शब्द प्रयोग और अति कथनों में कहीं–कहीं अतार्किक विस्तार और बड़बोलापन भी है, जिससे भाषा अनुभव की ओर ले जाने की बजाए सही फिकरे बाजी की ओर ले जाती प्रतीत होती है।

3.6.3 बिंब, प्रतीक और मिथक

नयी कविता में चमकते–खनकते बिंबों, प्रतीकों का प्रयोग काव्य–विलास की सामग्री बन गया था। एक दो नए बिंबों के प्रयोग मात्र को ही कविता कहा जाने लगा था। इस चमत्कारी बिंब प्रतीक की प्रवृत्ति को समकालीन कविता ने झटके से तोड़ा। उसने सपाटबयानी की शक्ति का वर्णन किया और इनके भीतर से कविता निचोड़ी। यह नहीं कि वहाँ प्रतीक है ही नहीं लेकिन वे चौंकाने के लिए नहीं आम आदमी की पीड़ा और संत्रास को कविता उन रोजमर्रा के प्रतीकों से कहती है जो अपनी सुपरिचितता के कारण बेहद सम्प्रेषणीय हैं – जैसे केदारनाथ सिंह की 'बैल' शीर्षक कविता में बैल उस मजबूर आदमी का प्रतीक हो जाता है जो दूसरों की इच्छा से संचालित होने के लिए विवश है –

वह चल रहा है और सिर्फ एक पगडंडी
उसे याद है जो उसकी पूँछ की तरह
उसे हाँके लिए जा रही है।

x x x

वह ऐसा जानवर है जो दिन भर
भूसे के बारे में सोचता है
रात भर ईश्वर के बारे में

समकालीन कविता में कुछ शब्द अक्सर प्रतीक रूप में उभर कर आए हैं। यद्यपि इनका प्रतीकार्थ अलग–अलग कवियों ने अलग ढंग से लिया है, जैसे– जंगल, शब्द सर्वेश्वर में समाज और इतिहास चेतना का प्रतीक है तो धूमिल की कविता यह अक्सर अव्यवस्था का प्रतीक होकर आया है जो भारतीय जनतंत्र की अराजकता को अर्थ देने लगता है।'जंगल' के साथ ही दल–दल, भेड़िये तथा अन्य बनैले पशुओं का जिक्र भी है। लीलाधर जगूड़ी की कविता में भी 'जंगल' अक्सर आता है। कभी–कभी अर्थ की नई चमक भी उसमें कौंधती है किन्तु लगातार पुनरावृत्ति और सदैव उसमें नया अर्थ भरने की चेष्टा इस समर्थ प्रतीक को अर्थहीनता के अंधकार में ले जाती है।

ऐतिहासिक–पौराणिक मिथकों का समसामयिक कविता में बखूबी प्रयोग हुआ है। इतिहास के पात्र भी मिथक के रूप में आए हैं। मिथकों के इस प्रयोग से जातीय अस्मिता और वर्तमान स्थितियों के बीच संवाद स्थापित किया गया है। श्रीकांत वर्मा की 'जलसाघर' नामक कविता में इतिहास प्रसिद्ध बर्बर विजेताओं के नाम लगातार कौंधते हैं। हत्या, लूटपाट और बलात्कार से भरे पूरे संग्रह में व्यापक युद्धोन्माद के बीच –

केवल अशोक लौट रहा है
और सब
कलिंग का पता पूछ रहे हैं
केवल अशोक सिर झुकाए है
और सब विजेता की तरह चल रहे हैं।

राजकमल चौधरी की कविता मुक्ति प्रसंग में 'उग्रतारा' के पौराणिक मिथक के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के मन की स्वाधीनता की घोषणा और संस्कारों की जकड़न की उलझन को व्यक्त करती है –

> अब तुम मेरी पूजा करो उग्रतारा में सोया हुआ वर्तमान हूँ, शिव हूँ
> तुम्हारा संपूर्ण आत्म निवेदन
> स्वीकारने का एकमात्र मुझको रह गया है अधिकार

समकालीन कविता के बिंबों अथवा शब्द चित्रों में भदेस की अनगढ़ता भी है और बिल्कुल मामूली रोजमर्रा की जिन्दगी की निकटता भी। कहीं असंबद्ध बिंब प्रतीकों का अतिशय विस्तार केवल जटिलता और बड़बोलेपन से आगे नहीं बढ़ पाता। असंबद्ध शब्दों के संशोधन में कवि कितनी ही चतुराई बरते वह भाषा के अवमूल्यन से आगे नहीं बढ़ पाता। यद्धपि भाषों के सामाजिक–राजनीतिक संस्कारगत अवमूल्यन के प्रति कवि काफी सचेत भी है।

3.6.4 नवीन काव्य लय

समकालीन कविता ने छंद को हर तरह से छीलकर गद्य लय में ढाल दिया है। आज कविता बोलचाल के वैचारिक गद्य और कविता के पार्थक्य को समाप्त कर रही है। नीचे एक उदाहरण दिया गया है –

> 'इससे अधिक हम कुछ नहीं बता सकते महाराज! हमारे बिके
> हाथों में जो ऐंठन होती है उसे जाना ही जा सकता है।
> द्वारपाल के लिए बनी बुर्जियों से कूदकर जब हम गिरफ्तार
> करने के लिए उनके हाथ थामते हैं तभी वह होता है हाँ
> महाराज! तभी उसके काले हाथों पर जगह–जगह अंधेरे के
> गाढ़े चकत्ते होते हैं। ....
>
> **(पता : ज्ञानेन्द्रपति)**

समकालीन कविता की अनेक कविताएँ गद्य की लय का विस्तार कवि मानते हैं कि कविता अब वक्तव्य है और तुक–तान की संगीत लहरी से मुक्त है। जब जीवन में संगीत नहीं तो कविता में कहाँ से आए। इसलिए समकालीन कविता अपने शिल्प की टेकनीक से जीवन वास्तविकता को रचती है। उसका नया काव्यात्मक मुहावरा गद्य–पद्य के कृत्रिम बंधन की पहचान मिटाकर सर्जनात्मकता में सक्रिय है। तर्क और बौद्धिकता, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भाषा के प्रभाव–दबाव से वह जीवन का यथार्थ उद्घाटित कर रही है।

3.7 समकालीन कविता : कुछ और संदर्भ

अस्सी के बाद हिंदी की समकालीन कविता में व्यापक परिवर्तन आया। नक्सलवाड़ी और आपातकाल के दिनों में हिंदी कविता में जो लाउडनेस आयी थी, धीरे–धीरे वह कम होती गई। राजेश जोशी, अरुण कमल, उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल, स्वप्निल श्रीवास्तव, गगन गिल, तेजी ग्रोवर आदि की कविताओं में इसे देखा जा सकता है। नब्बे के दशक के कवियों में भी

राजनीतिक आग्रह के बावजूद लाउडनेस नहीं दिखाई देती है। कुमार अबुंज, मदन कश्यप, विनोद दास, विमल कुमार, अनामिका, बद्री नारायण, नवल शुक्ल और देवी प्रसाद मिश्र आदि की कविताएं इस बात को तस्दीक करती हैं। अस्सी और नब्बे के दशक के कवियों की राजनीतिक कविताओं में वैचारिक गहराई अधिक दिखाई देती है। इन कवियों ने राजनीति के साथ–साथ सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों को भरपूर महत्व दिया। राजेश जोशी, उदय प्रकाश और अरुण कमल के पहले संग्रह में ऐसी कविताओं की बहुतायत है जिनमें सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्न प्रमुखता से उभरे हैं। अस्सी के बाद से ही स्त्री विमर्श की सघन उपस्थिति के कारण हिंदी कविता में 'जेंडर' की समझ का स्वरूप बदल गया। स्त्री कवियों के साथ–साथ पुरुष कवियों ने भी स्त्री जीवन की अच्छी कविताएं लिखीं। नब्बे के दशक के कवियों के वहाँ भी इन प्रश्नों को महत्व मिलता रहा। नब्बे के बाद की हिंदी कविता में भूमंडलीकरण के प्रत्याख्यान के साथ–साथ अंबेडकरवादी राजनीति के कारण हुए सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन का रेखांकन स्पष्ट रूप से मिलता है। यही वह समय है जब हिंदी में दलित कविता ने आकार ग्रहण किया और ओमप्रकाश वाल्मीकी, कंवल भारती, श्यौराज सिंह बेचैन, सी.वी भारती, असंगघोष, रजतरानी मीनू, सूरजपाल चौहान और अनिता भारती आदि ने अपनी कविताओं से समकालीन हिंदी कविता के परिसर को विस्तृत किया। नब्बे के बाद के कवियों में शरद कोकास, हेमंत कुकरेती, पवन करण, प्रेमरंजन अनिमेष, संजय कुंदन, नीलेश रघुवंशी, श्रीप्रकाश शुक्ल, शिरीष कुमार मौर्य, यतीन्द्र मिश्र, निर्मला पुतुल, विवेक निराला, वसंत त्रिपाठी, महेशचंद पुनेठा, तुषार धवल, अनिल त्रिपाठी, विशाल श्रीवास्तव, मनोज कुमार झा, अशोक कुमार पांडे, रविकांत, विमलेश त्रिपाठी, राकेश रंजन, ब्रज श्रीवास्तव, मृत्युजंय प्रभाकर, प्रांजल धर, स्वाति मेलकानी और संतोष कुमार चतुर्वेदी जैसे कवियों की कविताओं ने संभावनाओं के नए द्वार खोले हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इक्कीसवीं सदी में भी हिंदी कविता पूरी तेजस्विता के साथ आगे बढ़ रही है।

3.8 सारांश

समकालीन कविता की संवेदना में जीवन जगत का कोई क्षेत्र वर्जित नहीं है। इस तरह वह पूरा खुलापन अपनाती हुई राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों की विद्रूपताओं–विकृतियों को व्यंग्य और सपाटबयानी दोनों से ही अभिव्यक्त करती है। अपने समग्र प्रभाव में समकालीन कविता परिवेश की विकृतियों की तीव्र प्रतिक्रिया है। खोखले मूल्यों के प्रति उसमें निषेध का भाव है। पर मामली आदमी की शक्ति एवं संगठन में उसकी अटूट आस्था है। उसमें अस्तित्ववाद, क्षणवाद, कुंठावाद, भोगवाद, व्यक्तिवाद के लिए जगह नहीं है। मार्क्सवादी–समाजवादी विचारों के प्रगतिशील पक्ष की वह समर्थक है। किन्तु कथ्य तथा रूप विधान में वह विदेशी नारों और आंदोलनों की नकल नहीं है। उसमें अपनी जमीन और देश पूरी परिस्थिति के साथ मौजूद है। यह हमारी जमीन की जड़ों से फूटी कविता है, जिसमें जन–जन के कंठ की व्यथा–कथा, आशा–निराशा को वाणी मिली है। मानव की स्वतंत्रता को यह कविता बुनियादी मूल्य के रूप में अपनाती है और यही इसकी सार्थकता है।

बोध प्रश्न –3

1. 'समकालीन कविता की शिल्पगत प्रणालियों में सहजता की ओर झुकाव है – चमत्कार की ओर नहीं।' इस कथन पर प्रकाश पाँच पंक्तियों में डालिए।

.....

.....

.....

.....

2. समकालीन काव्य–भाषा की किन्ही दो विशेषताओं का संकेत कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3. समकालीन कविता के दो प्रमुख प्रबन्ध काव्यों और उनके कवियों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

4. समकालीन कविता की बिंब और प्रतीक चेतना पर तीन पंक्तियों में विचार कीजिए।

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न– 4

1. निम्नलिखित में से कौन–सा समकालीन कविता के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है –
   क) नयी कविता ख) साठोत्तरी कविता 3) प्रयोगवादी कविता

2. समकालीन कविता में निम्नलिखित में से क्या नहीं है?
   क) परिवेश के प्रति सजगता ख) विषमता और विद्रूपता का चित्रण ग) श्रृंगारिक परिवेश

3. निम्नलिखित में से किसे समकालीन कविता का कवि नहीं कहा जा सकता?
   क) धूमिल ख) मलयज ग) केदारनाथ सिंह घ) महादेवी वर्मा

4. निम्नलिखित रचनाओं के लेखक कौन है।
   क) संसद से सड़क तक ख) इतिहासहंता ग) जलसाघर घ) मुक्ति प्रसंग

5. निम्नलिखित कवि समकालीन कविता की किस धारा से जुड़े हैं।
   क) रमानाथ अवस्थी ख) सौमित्र मोहन ग) रघुवीर सहाय

3.9 शब्दावली

सांप्रतिक कविता : आज की कविता।

लघुमानव : अमरीकी अस्तित्ववादी दर्शन का सिद्धांत है। नयी कविता में लघुमानव सिद्धांत का प्रचार कवितावादी, सौंदर्यवादी और अनास्थावादी मूल्यों के प्रचार करते रहे हैं। मुक्तिबोध इस सिद्धांत की निंदा करते हैं।

तात्कालिकता :रचना में तात्कालिकता आमने–सामने घटित होने वाले दृश्यों को चमकीले प्रतीकों में बांध कर व्यक्त करती है।

सशस्त्र राजनीति : अधिकार के लिए हिंसा का समर्थन करने वाली राजनीति।

अवमानवीकरण : मनुष्य को उसकी प्रकृत स्थितियों से नीचे गिरा कर उसका अवमूल्यन कर देना। मानवीय गरिमा का सम्मान न करना।

कुलकवाद : खानदानवाद।

क्षणवाद : अस्तित्ववादी दर्शन का पारिभाषिक शब्द यह दर्शन निरंतरता में विश्वास नहीं रखता इसलिए यह इतिहास बोध के विपरीत होता है।

कुंठावाद: मनोविश्लेषण शास्त्र का पारिभाषिक शब्द। अभावों से कुंठा का जन्म होता है। कुंठाएँ मनुष्य के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास को रोकती है।

3.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1) देखिए उप–भाग 3.2.2 तथा 3.2.4

2) देखिए उप–भाग 3.2.4

3) i) x ii) x iii) √

4) समकालीन कविता के संवेदात्मक तत्वों में तात्कालिकता और आधुनिकता की विशेष भूमिका है। इन दोनों तत्वों ने मिलकर समकालीन कविता को नयी संवेदात्मक दिशा दी है।

5) समकालीनता से तात्पर्य है सन 1960 के बाद विकसित होने वाली कविता। सन् 1960 के बाद की हिंदी कविता में अनुभवों को अभिव्यक्ति में ढाला गया। फलतः कविता जीवन अनुभवों के यथार्थ से उपजी कविता है। इसे हम कल्पित कविता का नाम नहीं दे सकते।

6) क) देखिए उप–भाग 3.2.2
ख) देखिए उप–भाग 3.2.3
ग) देखिए उप–भाग 3.2.4

बोध प्रश्न –2

1. देखिए भाग 3.4
2. देखिए भाग 3.5
3. देखिए उप–भाग 3.5.1
4. 1) कुआनो नदी 2) शब्दों के तल्प पर 3) पटकथा

5. देखिए उप–भाग 3.5.3
6. देखिए उप–भाग 3.5.5
7. क) x ख) √ ग) x
8. 1) अकविता 2) विचार कविता 3) युयुत्सावादी कविता 4) जन कविता

बोध प्रश्न –3

1. समकालीन कविता जीवन की वैचारिक स्थितियों को बोलचाल की संप्रेषणीय भाषा में प्रस्तुत करती है। इसकी लंबी कविताओं में भी गद्य की ओर झुकाव वैचारिकता के कारण ही है। इन कवियों के बिंब और प्रतीक ऐसे हैं जिनमें जटिलता नहीं हैं। प्रायः वे अनुभव से उभरे बिंब और प्रतीक हैं। गीत, नवगीत और मुक्तछंद परक खुली कविताओं में अपने आसपास के अनुभव को कवियों ने स्वाभाविकता से प्रस्तुत कर दिया है। इसलिए इन कवियों को चमत्कार प्रदर्शन करने वाले कलावादी कवि नहीं कहा जा सकता है।
2. देखिए उप–भाग 3.6.2
3. क) कालजयी – भवानी प्रसाद मिश्र
   ख) महाप्रस्थान – नरेश मेहता
4. देखिए उप–भाग 3.6.3

बोध प्रश्न –4

1. क) x ख) √ ग)x
2. क) x ख) x ग) √
3. क) √ ख) √ ग)√
4. क) धूमिल ख) जगदीश चतुर्वेदी ग) श्रीकांत वर्मा घ) राजकमल चौधरी
5. क) नवगीत ख) अकविता ग) प्रगतिशील यथार्थ की धारा

3.11 उपयोगी पुस्तकें

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, समकालीन कविता का यथार्थ, हरियाणा साहित्य अकादेमी, चंडीगढ़।

डॉ. रघुवंश, समसामयिकता और आधुनिक हिंदी कविता, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, समकालीन कविता का व्याकरण, शुभदा प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली–32।

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिंदी कविता, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

डॉ. सुखवीर सिंह, कविता का वैचारिक वर्तमान, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली–32।

इकाई 4 केदारनाथ अग्रवाल

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 जीवन परिचय एवं कृतित्व
4.3 पृष्ठभूमि
4.4 केदारनाथ अग्रवाल के काव्य की अन्तर्वस्तु
    4.4.1 ऐतिहासिक चेतना और राजनीतिक कविताएं
    4.4.2 सामाजिक यथार्थ और श्रम सौंदर्य का चित्रण
    4.4.3 परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव
    4.4.4 प्रेम संबंधी कविताएँ
4.5 संरचना शिल्प
4.6 सारांश
4.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
4.8 उपयोगी पस्तकें

4.0 उददेश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- केदारनाथ अग्रवाल के जीवन परिचय एवं कृतित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे;
- केदारनाथ अग्रवाल की युगीन पृष्ठभूमि के बारे में जान सकेंगी/सकेंगे;
- केदारनाथ अग्रवाल के काव्य की विशेषताएँ जान कर बता सकेंगी/सकेंगे कि केदारनाथ अग्रवाल
  एक महत्वपूर्ण प्रगतिशील कवि हैं;
- जान सकेंगी/सकेंगे कि कैसे केदारनाथ अग्रवाल, गहरी जीवनासक्ति के कवि हैं, मानव और
  प्रकृति से उन्हें कितना लगाव है; और
- केदारनाथ अग्रवाल के काव्य शिल्प के बारे में बता सकेंगी/सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप प्रगतिवाद के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल के बारे में पढ़ेंगे। सबसे पहले हम केदारनाथ जी का जीवन परिचय

और उनके कृतित्व की जानकारी हासिल करेंगे। केदार जी का जीवन एक मध्यवर्गीय जीवन रहा है। पेशे से वे वकील रहे हैं किन्तु किसानों, मजदूरों से उनका संबंध बहुत करीबी रहा है। उनका सारा कृतित्व व्यापक अर्थों में आम आदमी के सुखः दुःख, उसकी तकलीफों, शोषण और शोषण को दूर करने की चिंताओं से सरोकार रखता है। केदारनाथ अग्रवाल लगभग पचास वर्षों से साहित्य सर्जना में रत हैं। पृष्ठभूमि में हम उनके युग के राजनीतिक–सामाजिक वातावरण का विश्लेषण करेंगे। केदारजी की युगीन पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आजाद भारत का आज तक का युग समाहित हो जाता है।

केदारजी प्रगतिशील कवि हैं। उन्होंने जीवन को मार्क्सवादी चिंतन द्वारा प्राप्त वैज्ञानिक प्रगतिशील दृष्टि से अपने विवेक द्वारा विश्लेषित, विवेचित करते हुए देखा और कलमबद्ध किया है। इसलिए जहाँ वे अपनी राजनीतिक कविताओं में इस देश की राजनीति के अंतर्विरोधों पर तीखी टिप्पणियाँ करते हैं वहीं शोषित मनुष्य के जीवन के अंतर्विरोध, संघर्ष और उसकी अदम्य शक्ति को भी नजरंदाज नहीं करते। केदार जी ने प्रेम और प्रकृति पर भी ढेरों कविताएँ लिखी हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि वे सिर्फ राजनीतिक कवि नहीं हैं। इसके अलावा श्रमशील मनुष्य पर भी उन्होंने बहुत लिखा है। वास्तव में वे गहरी जीवनासक्ति के कवि हैं। वे मानवीय संबंधों में समानता के पक्षधर हैं। प्रगतिशील कवि ऐतिहासिक चेतना से युक्त होता है अर्थात् वह समाज को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, वर्गचेतन प्रधान दृष्टि से देखता है, प्रकृति के प्रति उसका सहज और स्वाभाविक लगाव होता है। केदारनाथ अग्रवाल ऐसे ही प्रगतिशील कवि हैं। उनके काव्य की अंतर्वस्तु का अध्ययन करते हुए आप केदार जी के काव्य की इन विशेषताओं को विस्तार से जानेंगे।

संरचना शिल्प शीर्षक के अंतर्गत हम केदार जी के काव्य शिल्प और काव्यभाषा का विश्लेषण करेंगे। केदार जी की काव्य भाषा सरल और सहज है किंतु कलाहीन नहीं है। भाषा की सरलता और सहजता का यह गुण उन्हें जनता से जुड़े होने के कारण प्राप्त हुआ है। ऐन्द्रियकता, चित्रात्मकता और बिंब उनकी काव्य भाषा को कलात्मक बनाते हैं। सरल और सहज होने के कारण उनकी काव्यभाषा अत्यधिक संप्रेषणीय है। वस्तुतः संप्रेषणीयता उनकी काव्य भाषा और काव्यशिल्प का सबसे बड़ा गुण है। आइये केदार जी के जीवन और कृतित्व की जानकारी प्राप्त करें।

4.2 जीवन परिचय एवं कृतित्व

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 1 अप्रैल 1911 को बाँदा जिले के बबेरू तहसील के कमासिन नामक ग्राम में हुआ था। उनकी मां का नाम घसिट्टो और बाप का नाम श्री हनुमान प्रसाद था जो शुरू से ही रसिक प्रवृत्ति के कला प्रेमी व्यक्ति थे और कविता भी लिखते थे। शिक्षा दीक्षा के ग्रामीण माहौल में भय और आतंक के बल पर पढ़ाई होती थी। केदार भी ऐसे माहौल में गांव के अन्य बच्चों की तरह कक्षा तीन तक पढ़े और उसके बाद रायबरेली आ गये। फिर पिता के कटनी जाने पर कक्षा छह की पढ़ाई कटनी में हुई। कटनी में एक साल रहने के बाद ये अपने पिता जी के साथ जबलपुर चले गये और सन् 1927 में इलाहाबाद यहीं रह कर उन्होंने बी.ए. किया और कानून पढ़ने कानपुर चले गये। 1938 में लॉ की डिग्री ले कर बाँदा लौटे और वकालत करने लगे।

केदार जी का विवाह बहुत छोटी उम्र में ही हो गया था, जब वे सातवीं में ही थे। इंटर में उन्हें एक कन्या प्राप्त हो चुकी थी। केदार जी के घर पर माहौल आम तौर पर धार्मिक था। घर के लोग हिंदू रीति, धार्मिक परंपराओं, रूढ़ियों और टोने–टोटकों का भरपूर पालन करते थे। होली, दशहरा, दीवाली, ईद, मुहर्रम पूरे गाँव में मनाए जाते थे। हिंदू–मुसलमान दोनों एक दूसरे के त्योहारों में बराबर शरीक होते थे। गांव में सांस्कृतिक माहौल के साथ–साथ प्राकृतिक वातावरण भी था। ढाक का जंगल पास ही था। केदार अक्सर जंगल में निकल जाते और हिरनों का चौकड़ी भरना देखते या रात में सियारों की हुँआ–हुँआ सुनते। स्कूल के अखाड़े में कसरत और कुश्ती में भी वे भाग लेते। केदार के मन पर भेदभाव के संस्कार बचपन ही से न थे। गांव में अधिकांश लोग गरीब थे। उच्च या मध्यमवर्ग के लोग बहुत कम थे। केदार जी गरीब बच्चों के साथ खेलते, उनके घर आते–जाते और इस तरह एक–एक घर की गरीबी से बहुत अंतरंग रूप से परिचित होते रहे। 'इस परिचय का उनके बालपन पर ऐसा अमिट प्रभाव पड़ा कि बाद को जब उनका कवि प्रकट हुआ तब यह दुख–दर्द और संघर्ष, हाड़तोड़ मेहनत, अमीरी की ओढ़ी हुई ठसक की तुलना में गरीबी की सहजता, निर्मलता आदि उनकी कविता में हजार–हजार कंठों से फूट पड़ी' **(केदारनाथ अग्रवाल सं. अजय तिवारी, पृष्ठ 226)।**

प्रकृति से लगाव के कारण ही केदार जब रायबरेली स्कूल में पढ़ते थे तो अंग्रेजी आदि कक्षाओं में उनका मन नहीं लगता था, उन्हें 'नेचर स्टडी' और 'मैनुअल ट्रेनिंग' की कक्षाएं अधिक प्रिय थीं, नेचर स्टडी की कक्षा में क्यारियाँ बनाते, आलू बोते, सब्जी लगाते, सिंचाई गुड़ाई करते। उन्हें नरम–नरम मिट्टी बहुत अच्छी लगती। कॉपी पर पत्तियों को चिपकाना इस कोर्स का हिस्सा था जिसने वनस्पतियों से केदार का घनिष्ठ परिचय कराया।

केदार के पिता स्वयं कवि थे किन्तु केदार को साहित्यिक माहौल जबलपुर और इलाहाबाद में मिला। छुटपन से ही कविता लिखने में ये रुचि लेने लगे थे। जबलपुर में रहते हुए इनके पिता वैद्यकी भी करते थे और रुचि के अनुसार काव्य चर्चा और काव्य रचना में समय भी देते थे। जबलपुर में उन दिनों अच्छा साहित्यिक माहौल था। विभिन्न साहित्यिकार इनके पिता के घर पर जमा होते, साहित्य चर्चा होती, समस्यापूर्ति होती। यहीं पर केदार जी ने निराला विरोध का स्वर सुना। निराला द्वारा संपादित 'मतवाला' पढ़ा और देखा। इसके बाद सन् 1927 में केदार आठवीं पास करने के बाद अपने पिता जी के साथ इलाहाबाद आए। यहाँ उनके पिता के मित्र 'रसालजी' थे, जिन्होंने 'रसिक मंडली' स्थापित की हुई थी। इसमें 'कवित्त सवैया' और समस्यापूर्ति वाले ब्रजभाषा के कवि आते थे। केदार जी इन गोष्ठियों के असर से ब्रजभाषा की और झुके। 'सरस्वती' के माध्यम से यहाँ खड़ी बोली काव्य से भी केदारजी का परिचय स्थापित हुआ। नरेन्द्र जैसे कवियों से केदार जी का यहीं परिचय हुआ और मित्रता बनी।

कानपुर में बिताया समय केदार के जीवन में महत्वपूर्ण है। मजदूर जीवन की परिस्थितियों और मजदूर वर्ग की विचारधारा–मार्क्सवाद से उनका परिचय और आत्मीयता कानपुर में ही हुई। बालकृष्ण बलदुआ के इर्द–गिर्द प्रगतिशील विचारों और साहित्यिक संस्कारों का माहौल था। उनके संपर्क में केदार जी ने बहुत सा विदेशी साहित्य भी पढ़ा।

जब 1932 में केदार बाँदा आ कर वकालत करने लगे तो अदालत के कटु यथार्थ जीवन से और आदमी के स्वभाव के सच्चे–झूठे पक्षों के एक–एक रगरेशे से उनका साक्षात्कार हुआ।

इस प्रकार घर के साहित्यिक माहौल, गाँव के श्रमशील जीवन, प्रकृति से गहरा लगाव और समाज के प्रति गहन मानवीय संवेदना के द्वारा केदार का व्यक्तित्व और कवि व्यक्तित्व बना।

कृतित्वः केदारजी ने काव्य रचना के अलावा छिटपुट गद्य रचना भी की हैं। केदार का पहला काव्य संग्रह 'युग की गंगा' 1947 में प्रकाशित हुआ था। तब से लेकर आज तक केदार जी के बहुत से संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें गुलमेंहदी, युग की गंगा, फूल नहीं रंग बोलते हैं, कहें केदार खरी–खरी, जमुन जल तुम, हे मेरी तुम! प्रमुख हैं।

गद्य रचनाएँ : केदारजी ने एक उपन्यास 'पतिया' और वैचारिक गद्य भी लिखा है जिसमें साहित्य से संबंधित प्रश्न, कई कवियों पर लेख, कविता, विश्लेषण, समीक्षाएँ, साक्षात्कार और साहित्येतर विषयों पर भी लेख शामिल हैं। उनका गद्य उनके तीन निबंध संकलनों में संकलित है। इसके अलावा उन्होंने एक यात्रा–संस्मरण, विदेशी कवियों की कविताओं के अनुवाद भी किये हैं।

काव्य रचनाएँ
युग की गंगा
नींद के बादल
गुलमेंहदी
फूल नहीं रंग बोलते हैं
लोक और आलोक
कहें केदार खरी–खरी
आग का आइना
जो शिलाएँ तोड़ते हैं
जमुन जल तुम
मार प्यार की थापें
पंख और पतवार
हे! मेरी तुम
अपूर्वा
बस्ती खिले गुलाबों की

उपन्यास
पतिया

वैचारिक गद्यः निबंध
समय–समय पर (1970)
विचार बोध (1980)
विवेक विवेचन (1981)

यात्रा संस्मरण
बस्ती खिले गुलाबों की
अनुवाद

4.3 पृष्ठभूमि

आजादी से पूर्वः प्रगतिशील काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि केदार जी का आजादी से पूर्व साहित्यिक जीवन जब प्रारंभ हुआ उस समय देश अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा पाने का प्रयास कर रहा था। देश में कांग्रेस पार्टी की बागडोर गाँधी जी के हाथ में थी। 1930 में कांग्रेस द्वारा चलाए गए आंदोलन की असफलता के बाद बहुत से लोग गाँधीवादी रास्ते का विकल्प ढूँढने लगे थे। कांग्रेस के भीतर सोशलिस्टों का एक दल संगठित हुआ, इस दल ने कांग्रेसी नेताओं का विरोध करते हुए किसान सभाएँ की, अनेक कम्युनिस्टों ने मजदूर सभाएँ बनायीं – जिनमें कानपुर की मजदूर सभा उल्लेखनीय है।

फिर भी, अंग्रेजों से अखिल भारतीय स्तर पर लोहा लेने के लिये कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी पार्टी थी, जिसे व्यापक स्तर पर जनता का समर्थन प्राप्त था। कम्युनिस्ट अभी अपना सुदृढ़ आधार नहीं बना पाए थे। किन्तु समय–समय पर कांग्रेस की बुर्जुआ नीतियों और दृष्टिकोण की आलोचना करते रहते थे। वाम पक्ष के अधिकांश नेताओं का यह मानना था कि किसानों को संगठित किए बिना, उनका सामंत विरोधी संघर्ष चलाए बिना स्वाधीनता आंदोलन में सफलता नहीं मिल सकती। दूसरी ओर कांग्रेस, गाँधी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक तरीके से सभी को अपने साथ लेकर स्वाधीनता प्राप्ति का मार्ग खोज रही थी।

दूसरे महायुद्ध में जर्मनी और जापान की हार के बाद दक्षिणी पूर्वी एशिया में जबर्दस्त क्रांतिकारी जन उभार आया। भारत में बंबई का नाविक विद्रोह (1946) इस जन उभार का प्रतीक है। इस जन उभार के बारे में वामपंथियों का मानना है कि कांग्रेस ने इस जन उभार का समर्थन नहीं किया क्योंकि कांग्रेस क्रांति और सशस्त्र संघर्ष नहीं चाहती थी। यहाँ तक यह बात सही है कि गाँधी जी अहिंसक तरीकों द्वारा ही आजादी प्राप्त करने के प्रयास कर रहे थे। इस प्रयास में वे किसानों, मजदूरों, जमींदारों, पूँजीपतियों सभी को साथ ले रहे थे। वाम पक्ष उनकी इस अहिंसक नीति का विरोध करता रहा है। वस्तुतः कांग्रेस और वाम पक्ष के दृष्टिकोण की भिन्नता ही इस कांग्रेस और वाम पक्ष का केन्द्रबिंदु थी।

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँः आजादी से पूर्व के भारत में एक नया मध्यमवर्ग उभरने लगा था, जो नयी दिशा–दीक्षा प्राप्त कर अपना अलग से अस्तित्व बना रहा था फिर भी समाज के ढाँचे में कोई मलभूत परिवर्तन नहीं हुआ था। कई समाज सुधार आंदोलन चल चुके थे किंतु बाल विवाह, सती प्रथा, जैसी कुप्रथाएँ अभी भी समाज में विद्यमान थी। अंग्रेजी शिक्षा–दीक्षा अंग्रेजों के हितों के लिए केवल बाबू वर्ग का ही निर्माण कर रही थी। किसान मजदूरों की दशा दयनीय थी किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति की लहर में सभी लोग अपना समर्थन दे रहे थे। यह सामाजिक चेतना जनता में पनप चुकी थी कि अंग्रेजों से छुटकारा पाए बिना इस देश और समाज का उद्धार नहीं हो सकता। अनपढ़ता, गरीबी, कुप्रथाएँ, इन सबको मिटाने के लिए स्वतंत्र भारत का आजाद होना आवश्यक है।

देश की आर्थिक दशा बहुत खराब थी। अंग्रेजों ने शोषण के बल पर इस देश को गरीबी के मुहाने पर ला पटका था। किसान की फसल का आधे से अधिक हिस्सा जमींदार, नवाब और अंग्रेज की जेब में पहुँच जाता था। किसानों मजदूरों की दशा इस अर्थ में भी बहुत दयनीय थी कि उन्हें अंग्रेज हाकिमों और जमींदारों, दोनों के शोषण तले पिसना पड़ता था।

साहित्यिक पृष्ठभूमिः पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि हिंदी में 'प्रगतिवाद' का आरंभ 1936 के आसपास हुआ था। केदार जी के साहित्य में प्रवृत्त होने का लगभग यही समय है। उस समय हिंदी कविता में छायावाद सिमटने लगा था और यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में प्रगतिवाद आंदोलन उभरने लगा था।

इस प्रकार केदार के साहित्यिक जीवन का आरंभ ऐसे राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक माहौल में हुआ जब अंग्रेजों से देश को आजाद करवाने के लिए स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ रहा था। आर्थिक रूप से देश जर्जर स्थिति में था और साहित्य में छायावादी कविता की जगह प्रगतिशील कविता ले रही थी।

आजादी के बादः देश आजाद हुआ। राजनीतिक रूप से शासन सत्ता अपने लोगों के हाथ में आयी। पूरे देश की जनता ने ये उम्मीदें बाँधी हुईं थीं कि आजाद होने पर उनके दुःख–दर्द दूर होंगे। किसान, मजदूरों को आशाएँ थीं कि उन्हें जमींदारों, मिल मालिकों के शोषण से छुटकारा मिलेगा, सामाजिक कुप्रथाओं का अंत होगा, किंतु जनता की सारी आशाएं पूरी नहीं हो सकीं। इसी दौरान सन् 1962 तथा 1965, 1971 में भारत को तीन युद्धों का भी सामना करना पड़ा जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। जाति प्रथा, शोषण, गरीबी, अशिक्षा जैसी सामाजिक बुराईयाँ अभी तक हमारे समाज में व्यापक स्तर पर विद्यमान हैं। आज़ादी के बाद का यह भारत भी केदार जी के कृतित्व की पृष्ठभूमि रहा है। साहित्य में प्रगतिवाद आंदोलन जब शुरू हुआ, उसके समानांतर ही व्यक्तिवादी कविता लिखने का भी एक दौर चला – जिसका नामकरण 'प्रयोगवाद' हुआ। 1936 में जिस प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी– आजादी के बाद वह धीमा पड़ता गया। व्यक्तिवादी कविता ही विभिन्न स्वरों में फूटती रही। प्रगतिशील कविता पृष्ठभूमि में चली गयी। इसका कारण शायद यही रहा कि अधिकांश साहित्यकारों का संबंध सामान्य जनता – किसानों और मजदूरों से नहीं रहा। अधिकांश लेखक मध्यमवर्ग से ही आए। मध्यमवर्ग ही साहित्य लेखन का मुख्य सरोकार बनता गया। किंतु ऐसी परिस्थितियों में भी प्रतिबद्ध प्रगतिशील रचनाकार नागार्जुन, शील, केदारनाथ, त्रिलोचन आदि निर्द्वन्द भाव से अपने लेखन कर्म में जुटे रहे।

1962 में देश की कम्युनिस्ट पार्टियों में भी विभाजन हो गया। जनवादी संघर्ष के कमजोर होने का एक राजनीतिक कारण यह भी रहा।

बोध प्रश्न –1
निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. केदारनाथ अग्रवाल ने काव्य के अतिरिक्त साहित्य की और किन–किन विधाओं में रचना की है?

   .....
   .....
   .....
   .....

2. केदारजी के चिंतन पर किस विचारधारा का प्रभाव पड़ा है?

   .....
   .....
   .....
   .....

4.4 केदारनाथ अग्रवाल के काव्य की अंतर्वस्तु

केदार ने अपनी लेखन यात्रा का आरंभ चौथे दशक से किया था। प्रारंभ में इन्होंने प्रेम और सौंदर्य की कविताएँ लिखीं लेकिन धीरे–धीरे युग के यथार्थ से जुड़ कर उनका प्रेम एक व्यापक आधार लेकर श्रमशील जनता से जुड़ता गया। किसान और मजदूर, प्रकृति और मनुष्य उनके काव्य के मुख्य सरोकार बनते चले गये। इसलिए केदार जी के काव्य की अन्तर्वस्तु का दायरा बहत व्यापक है। इनके काव्य की विशेषताओं पर विचार करते हुए आलोचकों ने उनकी विभिन्न विशेषताओं को रेखांकित किया है। प्रख्यात प्रगतिशील आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'पिछले तीस–चालीस साल में जिन कवियों की रचनाओं में राजनीति की निर्णायक भूमिका रही है, वो हैं : केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन। दूसरे महायुद्ध के दौरान और दूसरे महायुद्ध के बाद, मोटे तौर से 1957 तक भारत के स्वाधीनता आंदोलन और भारत की जनवादी क्रांति, इनके उतार–चढ़ाव से जो सबसे ज्यादा गहरायी से संबद्ध रहे हैं, वे हैं केदारनाथ अग्रवाल और इस उतार–चढ़ाव को जिस कवि ने सबसे शक्तिशाली ढंग से अपने साहित्य में, अपनी कविता में प्रतिबिम्बित किया है, वह भी हैं केदारनाथ अग्रवाल' केदार जी की कविता में राजनीति की निर्णायक भूमिका तो है ही किंतु साथ ही उसमें बुंदेलखंड और बुंदेलखंड की प्रकृति, प्राकृतिक परिवेश और जन–जीवन की धड़कनें और रंग भी हैं – इसलिए एक आलोचक इनकी कविता का सबसे बड़ा गुण मानते हैं लोकरूपता को। केदार ने किसानों और श्रमशील जनता पर बहुत लिखा है इसलिए डॉ. शिव कुमार मिश्र इन्हें मूलतः किसानी संवेदना का कवि मानते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र केदार की प्रकृति संबंधी कविताओं के आधार पर केदार की कविता को 'प्रकृति के साहचर्य में मुक्ति की तलाश' की कविता मानते हैं – 'केदारनाथ अग्रवाल अपनी सौंदर्य चेतना और सूक्ष्म चित्रण शक्ति के कारण प्रगतिवाद के दायरे को लांघ जाते हैं और अपना एक दूसरा काव्य संसार भी उजागर करते हैं।'

आलोचकों के ये सारे मत इस बात के गवाह हैं कि केदारनाथ अग्रवाल रूढ़िबद्ध प्रगतिशीलता के पक्षधर नहीं हैं और न ही उनकी कविता केवल राजनीति की अभिव्यक्ति तक ही सीमित है बल्कि राजनीति को वे जीवन को सुंदर, व्यवस्थित और शोषण से मुक्त कराने के हथियार रूप में देखते हैं। प्रकृति, प्रेम, किसान, मजदूर ये सब केदार जी के काव्य के व्यापक सरोकार हैं। हाँ इतना अवश्य है कि केदार जी व्यक्तिवाद के दायरे में कभी नहीं फंसे। बल्कि सामाजिक जीवन और समाज से जुड़कर ही अपनी काव्य–यात्रा का विकास करते रहे।

आइए, केदार के काव्य की अंतर्वस्तु को विस्तार से जानें।

4.4.1 ऐतिहासिक चेतना और राजनीतिक कविताएँ

यह आप पढ़ चुके हैं कि ऐतिहासिक चेतना संपन्न प्रगतिशील कवि अपने समय, अपने युग की राजनीति, सामाजिक वास्तविकता के प्रति प्रतिबद्ध रूप से जागरूक होता है। केदारनाथ अग्रवाल ने आजादी से पूर्व और आजादी के बाद की भारत की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकताओं का साक्षात्कार किया है। उनकी इस ऐतिहासिक चेतना को उनकी राजनीतिक कविताओं में देखा जा सकता है। डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन कि भारत की चालीस वर्षों की राजनीति का प्रगतिशील इतिहास यदि किसी कवि की रचनाओं में संपूर्ण रूप स अभिव्यक्त हुआ है तो वे कवि केदारनाथ अग्रवाल हैं, बहुत सार्थक है।

प्रत्येक कवि की एक राजनीतिक दृष्टि होती है – केदारजी की भी राजनीतिक दृष्टि है जिसे आप व्यापक शब्दों में प्रगतिशील राजनीतिक दृष्टि कह सकते हैं। यह दृष्टि उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन के अध्ययन चिंतन और भारत की जनता के दुःख–दर्द का अनुभव करके प्राप्त की है। मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार उन्होंने जो राजनीतिक दृष्टि प्राप्त की है, उसके अनुसार उनका यह विश्वास बना है कि भारत में ऐसा राजनीतिक वातावरण होना चाहिए ऐसी राजनीति होनी चाहिए, जो किसानों, मजदूरों और श्रमशील जनता को समाज में उनके अधिकार दिला सके, उनका शोषण दूर कर सके। ऐसी राजनीति की वे जनवादी सरकार के रूप में कल्पना करते हैं जो जनता की सरकार होगी, न कि पूंजीपतियों, जमींदारों और बड़े–बड़े इजारेदारों की। यह केदार जी की राजनीतिक दृष्टि है, जो उनकी कविताओं में, गीतों में अभिव्यक्त होती है।

आजादी से पूर्व, आजादी की लड़ाई में कांग्रेस के सक्रिय नेताओं की नीतियों की आलोचना, उनके समझौतावादी रुख का विरोध तथा अंग्रेजी राज की भर्त्सना – केदार इसी दृष्टि के तहत करते हैं।

वे मानते हैं कि जब तक जनता की राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागेदारी नहीं होती – जब तक पूँजीपतियों, साम्राज्यवादियों, बड़े–बड़े जमींदारों, इजारेदारों और अंग्रेज़ी राज के खिलाफ एक साथ संघर्ष नहीं किया जाता – तब तक हमें पूर्ण आजादी नहीं मिल सकती। इसलिए जब–जब इस देश में व्यापक जन उभार आया, केदार की राजनीतिक चेतना प्रखरता के साथ उसका समर्थन करती रही, ऐसे जन उभारों के समय लिखी गयी केदार की कविताएँ चाहे प्रचारात्मक अधिक हैं किंत वे अपने युग, अपने समय की राजनीतिक स्थिति में उनका साथ देती हैं, जो संघर्ष कर रहे हैं, जो शोषित हैं – और जो वास्तव में इस देश और समाज की रीढ़ हैं।

1947 में देश आजाद हुआ। देश का बंटवारा हुआ लेकिन जनक्रांति नहीं हुई। अक्तूबर 1947, में केदार ने 'शपथ' कविता लिखी – आज़ादी मिलने के बाद भी –

वही जमींदारों का छल है
मानव से मानव शोषित है
अतः आज हम हँसते–हँसते
नयी शपथ यह ग्रहण करेंगे
जनवादी सरकार करेंगे

(कहें केदार खरी–खरी, पृ. 47)

अर्थात् केदार यह मानते हैं कि हमें जो आज़ादी मिली, वो पूरी आजादी नहीं थी। पूरी आज़ादी तब मिलेगी जब जमींदारों के शोषण तले गरीब किसान नहीं पिसेगा। आदमी–आदमी का शोषण नहीं करेगा। और यह आज़ादी तभी संभव है जब जनवादी सरकार बने, समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो। केदार जी की राजनीतिक समझ है, जो आजादी से पूर्व और आज़ादी के चालीस वर्षों के बाद आज भी, उतनी ही दृढ़ता से सार्थक और अपरिवर्तनशील है।

आजादी मिलने के बाद कांग्रेस ने सत्ता संभाली। केदार सत्ताधारी कांग्रेसी नेताओं को अपनी रचना द्वारा बार–बार आगाह करते रहे हैं कि हमें साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शक्तियों के हाथों नहीं बिकना है, उनकी सहायता ले कर आगे नहीं बढ़ना है बल्कि आत्मनिर्भरता का रास्ता अपनाना है –

यहाँ हमारी जन्मभूमि पर यदि आएगा डालर
वह अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे में
भारतीय पूँजीपतियों से सांठ–गांठ कर
क्रय दिल्ली की राजनीति को कर लेगा
नेहरू और पटेल की मति को हर लेगा

(कहें केदार खरी–खरी, पृ. 50)

यह आप जानते ही हैं कि आजादी मिलने के बाद पंचवर्षीय योजनाएँ आयीं। जनता की आशाएँ मोहभंग की स्थितियों से गुज़री, जनसंघर्षों के दौर धीमे पड़ते चले गये, कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन हो गया। ऐसी स्थितियों में केदार का राजनीतिक स्वर भी धीमा पड़ा किन्तु जनता के श्रम, संघर्ष और आशाओं में उनका विश्वास कम नहीं हुआ, वे निराश नहीं हुए बल्कि किसानों–मजदूरों और मेहनतकश जनता को वे बराबर धैर्य बंधाते रहे –

हल चलते हैं फिर खेतों में
फटती है फिर काली मिट्टी
फिर उपजेगा उन्नत मस्तक सिंह अयाली नाज
फिर गरजेगी कष्ट विदारक धरती की आवाज़

(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 155)

4.4.2 सामाजिक यथार्थ और श्रम सौंदर्य का चित्रण

प्रगतिशील कवि होने के कारण केदार जी की सामाजिक यथार्थ को देखने की जो दृष्टि है वो वर्ग चेतन प्रधान दृष्टि है। अर्थात् वे समाज में शोषित और शोषक वर्ग में भेद करते हैं और अपनी प्रतिबद्धता शोषितों, मेहनतकश किसानों और मजदूरों के प्रति जाहिर करते हैं। किंतु केदार जी की कविताओं की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जनता के पिछड़ेपन को, उसके अंधविश्वासों को नजरअंदाज नहीं किया गया है। सन् 1946 का जन उभार अपनी तर्कसंगत परिणति तक नहीं पहुंचा, इसका कारण वामपक्ष की कमजोरी के अलावा जनता का पिछड़ापन भी था –

अधिकांश जनता का
रद्दी की टोकरी का जीवन है
संज्ञाहीन, अर्थहीन
बेकार चिरे–फटे टुकड़ों सा पड़ा है।
देरी है – एक दिन, एक बार, आग के छूने की
राख हो जाना है।

(गुलमेंहदी, पृ. 29)

कानपुर के मजदूर दिन भर काम करके
कॉंखते हॉंफते
रोज़ की बदबू में सड़ते हैं दुनिया की

(गुलमेंहदी, पृ. 44)

एक मजदूर है चैतू
सूरज डूबे, छुट्टी पाके
जिंदा रहने से उकता के
ठर्रा पीता है और सो जाता है

(गुलमेंहदी, पृ. 47)

इससे बढ़कर है चंदू
कहीं एक कोने में बैठा
हाथ चरस की चिलम दबाए
गुपचुप, गुपचुप फूँक उड़ाता
शेष आयु का धुंआ उड़ाता

(गुलमेंहदी, पृ. 46)

वर्तमान समाज–व्यवस्था में जनशक्ति कैसे बरबाद होती है, इसकी ओर केदार ने बार–बार ध्यान दिया है। उधर मध्यम वर्ग के बाबू का यह हाल है कि छह दिन काम किया है –

सातवाँ दिन अब मिला है
आज तो सुस्ता रहा हूँ

सुस्ता रहे हैं, शान से लेटे हुए हैं,
स्वप्न देखते हैं लंदन से
तीन देवता आ रहे हैं।
हिंद अब आज़ाद होने जा रहा है,

(गुलमेंहदी, पृ. 60)

केदार जी ने जनता के पिछड़ेपन और अंधविश्वासों पर तो लिखा ही है किंतु श्रम करते हर मनुष्यों पर बहुत लिखा है। रामविलास शर्मा ने ऐसी कविताओं को 'श्रम का सूरज' कहा है। केदार की श्रम के सौंदर्य पर लिखी गयी कविताओं में किसान अक्सर काम करते हुए दिखाया गया है –

पैनी कुसी खेत के भीतर
दूर कलेजे तक ले जा कर
जोत डालता है मिट्टी को

मेरे खेत में हल चलता है
फाड़ कलेजा गड़ जाता है
तड़–तड़ धरती तड़काता है
राह बनाता बढ़ जाता है।

(गुलमेंहदी, पृ. 55,67)

श्रम पर ही केदार जी की एक बहुत सुंदर कविता है 'छोटे हाथ'। सुन्दर मुख, सुंदर हाथों की उपमा कमल से दी गयी है लेकिन खेत जोतने वाले किसान के हाथ? केदार के लिए वे कमल जैसे हैं, लाल कमल जैसे, जो सवेरा होते ही काम में लग जाते हैं। हाथ का काम में लगना कमल का खिलना है –

छोटे हाथ
सबेरा होते
लाल कमल से खिल उठते हैं
करनी करने को उत्सक हो
धूप हवा में हिल उठते हैं

(गुलमेंहदी, पृ. 135)

श्रम के प्रति अपनी इसी निष्ठा के कारण केदार अवकाश भोगी वर्ग का निकम्मापन बर्दाश्त नहीं कर पाते। 'डाँगर' को इस वर्ग का प्रतीक बना कर कहते हैं –

ये कामचोर
आरामतलब
मोटे तोंदियल भारी भरकम
हट्टे–कट्टे सब डाँगर ऊँघा करते हैं
हम चौबीस घंटे हाँफते हैं ।

(गुलमेंहदी, पृ. 50)

केदार के लिए जनता कोई अमूर्त धारणा नहीं है – वह खेतों, खलिहानों में काम करती हुई भिन्न और स्पष्ट आकृतियों वाली जनता है। बुंदेलखंड के आदमी–

हट्टे–कट्टे हाड़ों वाले
चौड़ी चकली काठी वाले

(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 73)

युगों से जनता को सिखाया गया है कि उसका दुःख–दर्द उसके पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। मेहनत करनी पड़ती है फिर भी खाने को नहीं मिलता, क्योंकि पूर्वजन्म में पाप किये थे। केदार इसके विरोध में नया जीवन–दर्शन लेकर आए हैं। श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता, और श्रम करने वाले लोग ही इस व्यवस्था को बदलेंगे–

खो सकता है
मेरा–तेरा
रत्ती–रत्ती जोड़ा सोना
हो सकता है
पूर्ण असंभव
का भी पूरा संभव होना
किंतु नहीं श्रम
मेरा–तेरा
इन हाथों का खो सकता है
इनके द्वारा
कर्म असंभव
पूरा संभव हो सकता है।

(गुलमेंहदी, पृ. 159)

बोध प्रश्न –2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. केदारनाथ अग्रवाल किस प्रकार की राजनीति की तरफदारी करते हैं – चार पक्तियों में उत्तर दीजिए।

   .....
   .....
   .....
   .....

2. सामाजिक यथार्थ को देखने की केदारजी की दृष्टि कैसी है, सही पर निशान लगाइए।
   क) वर्गहीन
   ख) वर्गचेतन प्रधान
   ग) व्यक्तिवादी

3. केदारजी किसानों, मजदूरों की सामाजिक, आर्थिक हालत की चर्चा करते हुए भी उनके पिछड़ेपन को नजरंदाज नहीं करते, कोई उदाहरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

4.4.3 परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव

केदार जी ने प्रकृति पर ढेरों कविताएं लिखी हैं। बुंदेलखंड की प्रकृति और प्राकृतिक परिवेश उनकी कविताओं में जीवंत होकर आया है। अपने परिवेश और प्रकृति से केदार का यह लगाव जीवन के प्रति गहरी आसक्ति का ही सूचक है। प्रकृति के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए केदार कहते हैं – 'प्रकृति में हम रहते हैं जो हमारे लिए माँ है – उसी को हमने अपने आज के साहित्य से निष्काषित कर दिया है और हम हो गए हैं प्रकृतिविहीन निस्संग आदमी। प्रकृति और जीवन से उद्‌भूत हुआ करता है सौंदर्य'। यह सौंदर्य केदार की प्रकृति संबंधी कविताओं में बिखरा पड़ा है। एक प्रगतिशील कवि प्रकृति पर कविताएं लिखता है तो प्रकृति को भी वो सामाजिक यथार्थ से भिन्न करके नहीं देखता। केदार का प्रकृति चित्रण भी सामाजिक वास्तविकता और यथार्थ के अनुभव से विच्छिन्न नहीं है। इसलिए गेहूँ की लहलहाती फसल केदार को हिम्मत वाली लाल फौज की याद दिलाती है।

टार–पार चौड़े खेतों में
चारों ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है
ताकत से मुट्‌ठी बाँधे है
नोकीले भाले ताने है
हिम्मत वाली लाल फौज सा
मर मिटने को झूम रहा है।

(गुलमेंहदी, पृष्ठ 21)

बुदेलखंड की प्रकृति और किसानी परिवेश केदार की कविताओं में इतना रच बस कर आता है कि मानो यही उनकी रचनादृष्टि का प्रेरक तत्व है। 'चंद्रगहना से लौटती बार' में वे एक मेड़ पर बैठ जाते हैं और देखते हैं –

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरेठा शीश पर

छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है

(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृष्ठ 2)

केदार को प्रकृति के वे रूप अधिक भाते हैं जिनमें गीत, जीवन, खुलापन, उत्साह और उमंग की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उन्हें धूप, नदी, पहाड़, बादल, हवा, फसलें बहुत आकृष्ट करती हैं।

धूप धरा पर उतरी
जैसे शिव के जटाजूट पर
नभ से गंगा उतरी

केदार को जैसे उगते सूरज की धूप बहुत प्रिय है, उसी तरह बसंत ऋतु भी बहुत प्रिय है। सरसों और फागुन उनकी कविता में एक साथ दिखाई देते हैं।

और सरसों की न पूछो

हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं
ब्याह मंडप में पधारी
फाग गाता मास फागुन
आ गया है आज जैसे

(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृष्ठ 17–18)

प्रकृति के प्रति गहरे लगाव के कारण बसंत ऋतु में खिले फूल ही केदार को आकृष्ट नहीं करते बल्कि छोटे से पोखर के तले उगी हुई घास देखकर भी वे उल्लसित होते हैं –

और पैरों के तले है एक पोखर
उठ रही इसमें लहरियाँ
नील तल में जो उगी है घास भरी

(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृष्ठ 18)

केदार की एक बहुत प्रसिद्ध कविता है – 'बसंती हवा', जिसमें मुक्ति की कामना बड़े उदात्त ढंग से अभिव्यक्त हुई है।

अनोखी हवा हूँ, बड़ी बावली हूँ
बड़ी मस्तमौला, नहीं कुछ फिकर है
बड़ी ही निडर हूँ, जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ, मुसाफिर अजब हूँ
न घर–बार मेरा, न उद्देश्य मेरा
न इच्छा किसी की, न आशा किसी की
न प्रेमी, न दुश्मन

जिधर चाहती हूँ, उधर घूमती हूँ
हवा हूँ, हवा मैं बसंती हवा हूँ।

आपने देखा कि केदार का प्रकृति चित्रण उनके प्राकृतिक परिवेश, स्थानिकता, उनकी सामाजिक विचारधारा और यथार्थबोध से गुंथा हुआ है।

4.4.4 प्रेम संबंधी कविताएँ

कुछ लोगों का यह मानना है कि प्रगतिशील कवि केवल मजदूर और किसानों के बारे में ही लिखता है – जीवन के अन्य पक्षों के बारे में वो नहीं लिखता। यह बात उन कवियों के बारे में सही हो सकती है, जो प्रगतिशीलता को एक वाद या नारे के रूप में अपनाते हैं किंतु सच्चे प्रगतिशील कवि जीवन को उसकी समग्रता में ग्रहण करते हैं और जीवन का कोई भी पक्ष, उनके लिए त्याज्य नहीं होता। प्रगतिशीलता उनकी जीवन दृष्टि का भाग होती है। केदारजी ने प्रेम और प्रकृति पर ढेरों कविताएं लिख कर इस बात को सिद्ध किया है कि वे रूढ़ अर्थों में प्रगतिशील नहीं हैं।

बल्कि केदार जी ने अपने कवि जीवन का प्रारंभ ही प्रेम और श्रृंगार के रोमानी कवि के रूप में किया था। और आज तक वे निरंतर प्रेम कविताएँ लिखते रहे हैं जो मुख्यतः 'नींद के बादल', 'गुलमेंहदी', 'जमुन जल तुम', 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं' और 'हे मेरी तुम!' आदि काव्य संग्रहों में संकलित हैं।

केदारजी का प्रेम रोमांटिक कवियों की तरह भावुकता से सना–पगा और काल्पनिक नहीं रहा है। उनका प्रेम अपनी प्रेमिका को एक व्यापक परिवेश में देखने की सामर्थ्य रखता हुआ विकसित हुआ है। उनके प्रेम की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने स्वकीया प्रेम किया है, परकीया प्रेम नहीं। अर्थात् उन्होंने अपनी पत्नी से ही प्रेम किया है, वे आरंभ ही से सामाजिक मर्यादित प्रेम के हिमायती रहे हैं।

स्वकीया प्रेम की यह विशेषता होती है कि आठों पहर मधुचर्या करने की बजाए प्रेमी एक–दूसरे के जीवन के विभिन्न अनुभवों में हिस्सा बँटाते हैं जब कि परकीया प्रेम में सामाजिक मर्यादा के साथ–साथ व्यक्ति अपने दायित्वबोध को भी भुला बैठता है। केदार ने मानवीय भूमि पर स्वकीया प्रेम की स्वस्थ भावना को खड़ा किया है।

केदार की प्रेम कविताओं में प्रेम व्यंजना के साथ–साथ सामाजिक प्राकृतिक परिवेश भी अपने यथार्थ के साथ गुंथ कर आता है, जैसे –

सिर्फ प्रेम व्यंजना वाली कविता
हे मेरी तुम!
यह जो लाल गुलाब खिला है, खिला करेगा
यह जो रूप अपार हँसा है, हँसा करेगा
यह जो प्रेम–पराग उड़ा है, उड़ा करेगा।

(जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 158)

प्रेम के साथ यथार्थ प्राकृतिक परिवेश

हे मेरी तुम!
काले–काले छाये बादल उड़ जाएंगे
गाँवो–खेतों मैदानों को, तज जाएंगे

(जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 166)

केदार अपनी 'तुम' को याद करते हुए अपने गाँव, अपने परिवेश, अपनी आंचलिक प्रकृति को नहीं भूलते। हिंदी में शायद ही किसी कवि ने प्रेम संबंधी कविताओं में अपने गांव को इतने विस्तार से याद किया हो –

प्यारी। मेरे जन्म गाँव में
प्यारी। उसी लड़कपन वाले गाँव में
प्यारी। उसी पढ़ाई वाले गाँव में
प्यारी। उसी रामलीला वाले गांव में
प्यारी। उसी कमासिन गांव में
अपने प्यारे गाँव में
नैनी से तुमको लाया हूँ।

(जमुन जल तुम, पृष्ठ 59–63)

केदार की प्रेम संबंधी कविताओं में प्रकृति का प्रेम, कविता का प्रेम, पत्नी का प्रेम इनका संगम हो जाता है। यह विशेषता उनके अपने व्यक्तित्व के विकास से ही संभव हुई है। जैसे–जैसे उम्र ढलती है, शेष जीवन के लिए प्रेम उतना ही महत्वपूर्ण होता जाता है। केदार की सहज भाव से लिखी हुई प्रेम कविताएं कवि की मनोदशाओं के उतार–चढ़ाव को बहुत अच्छी तरह से प्रकट करती हैं। इनमें करुणा की ऐसी अंतर्धारा है जो प्रेम को और भी मूल्यवान बना देती है। मृत्यु से भय है, चिड़ीमार ने चिड़िया मारी, किसी तरह कवि उसे जिलाए हुए हैं। काल बड़ा क्रूर है,

लेकिन अपना प्रेम प्रबल है।
हम जीतेंगे काल क्रूर को
उसका चाकू हम तोड़ेंगे
और जिएंगे
सुख–दुख दोनों साथ पियेंगे
कालक्रूर से नहीं डरेंगे
नहीं डरेंगे, नहीं डरेंगे

(हे मेरी तुम, पृष्ठ 14)

केदार जी की प्रेम कविताओं की यह विशेषता है कि उनमें कवि की सामाजिक यथार्य दृष्टि अभिव्यक्त होती है। इसीलिए प्रेम कविताओं में प्राकृतिक परिवेश, आंचलिक प्रकृति और प्रेम की उदात्तता, गरिमा और व्यापक मानवीय संदर्भ गुंथे रहते हैं।

बोध प्रश्न– 3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. केदार का प्रकृति चित्रण सामाजिक वास्तविकता और यथार्थ के अनुभव से विच्छिन्न नहीं है – कोई उदाहरण देकर बताइये।

   .....
   .....
   .....
   .....

2. केदार को प्रकृति के कौन से रूप अधिक भाते हैं और क्यों? चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   .....
   .....
   .....
   .....

3. केदार का प्रेम वर्णन सामाजिक यथार्थ दृष्टि से विच्छिन्न नहीं है? उदाहरण सहित दस पंक्तियों में टिप्पणी कीजिए।

   .....
   .....
   .....
   .....

4. केदारजी के प्रेम की दो तीन विशेषताएँ बताइये।

   .....
   .....
   .....
   .....

4.5 संरचना शिल्प

केदारजी की काव्य विशेषताओं को पढ़ते हुए आपने उनके काव्य के उदाहरण भी पढ़े हैं। आपने देखा कि केदार की कविताएँ बहुत सहज, सरल हैं और आसानी से समझ में आ जाती हैं। कविता में सहजता और सरलता का यह गुण केदार को लोकजीवन से गहरे रूप में संबद्ध रहने के कारण मिला है। उनकी कविताओं की संरचनात्मक पद्धति और शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता है संप्रेषणीयता।

यह शिल्प छायावादी कविता, और प्रयोगवादी कविता के शिल्प से भिन्न है। छायावादी भाषा जहाँ संस्कृतनिष्ठ, रोमानी और सायास गढ़े हुए शब्दों से आकार ग्रहण करती थी– वहीं प्रयोगवाद और आधुनिक कविता की भाषा में भी उलझाव जटिलता बहुत है। इसका कारण शायद वैचारिक दृष्टि और कथ्य के चुनाव पर है। छायावादी कवियों का कथ्य रोमानी एवं वायवी अधिक रहा है। इसी कारण भाषा और कला रूप पर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रयोगवादी कविता का कथ्य भी मध्यवर्गीय जीवन की कुछ जटिलताओं को प्रयोगधर्मिता के आधार पर देखना रहा है – इसलिए भाषा और काव्य संरचना भी जटिल होती रही है। केदार के काव्य का कथ्य संपूर्ण मानव और जीवन को वैचारिक दृष्टि से संवेदनात्मक धरातल पर ग्रहण करके अभिव्यक्ति देता है। फलतः केदार के यहाँ भाषा कथ्य को छिपाती या, उलझाती नहीं बल्कि पूरी संवेदना और वैचारिक स्पष्टता के साथ पाठक के सामने उद्‌घाटित करती है। चाँद प्रकृति का नैसर्गिक सौंदर्य हो, प्रेम कविताएँ हों, किसान–मजदूर के श्रम को उद्‌घाटित करती हुई रचनाएँ हों या राजनीतिक कविताएँ – यह स्पष्टता और सहजता बराबर बनी रहती है।

केदार की काव्य भाषा में ऐन्द्रियकता, चित्रात्मकता और लोकजीवन के विभिन्न रंग बहुत साफ होकर उभरते हैं। वे अपनी कविता में जिन बिंबों और प्रतीकों को लेते हैं, वे मानव संसार से जुड़े हुए बिंब और प्रतीक हैं। प्राकृतिक बिंब और प्रतीक भी मनुष्य की मुक्ति आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए आते हैं जैसे –

दहका खड़ा है
सेमल का पुरनिया पेड़
टपाटप टपकाता
जमीन पर
लाल लाल फूली आग

(हे मेरी तुम, पृष्ठ 55)

यहाँ सेमल के पुरनिया पेड़ से लाल–लाल फूली टपकती आग क्रांति का संकेत बन गयी है।

केदार जीवन को कभी भी एक दृश्यपटल में बदल कर उसका वर्णन नहीं करते बल्कि जीवन के बीच में अपने आपको रखकर यथार्थ से साक्षात्कार करते हैं – इसीलिए उनकी भाषा के कई तेवर हैं – जन आंदोलनों के समय लिखी गई राजनीतिक कविताएँ प्रचारात्मक हैं – किंतु प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य का चित्रण करते हुए उनकी भाषा में ऐन्द्रियकता, चित्रात्मकता इस खूबी के साथ गुंथ कर आती है कि संपूर्ण कविता प्रकृति के सौंदर्य की कलात्मक अभिव्यक्ति बन जाती है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'बसंती हवा' – जिसमें हवा की मुक्ति की आकांक्षा कविता के खत्म होते – मानव मुक्ति के स्वप्न से जड़ कर और भी अर्थगर्भित हो जाती है।

लयात्मकता उनकी भाषा की एक अन्य खूबी है जो उनकी लोकजीवन और जातीय संस्कृति की गहरी पहचान की सूचक है। उनकी भाषा में लोकजीवन के शब्द उनकी इसी पहचान को बढ़ाते हैं।

सरल और सहज भाषा में कविता रचते हुए केदार जन के करीब और अपने तो रहते ही हैं किंतु शब्दों, बिंबों का सचेत प्रयोग वे इस प्रकार करते हैं कि यह सरलता और सहजता ही विशिष्ट

बन जाती है। जैसे उनकी कविता की एक पंक्ति है – 'पानी की देह में सूरज उगा है' सूर्योदय का यह दुर्लभ और जीवंत चित्र है। इससे भाषा की व्यंजना शक्ति भी बढ़ी है और प्रकृति सौंदर्य भी।

प्रगतिशील कवियों के शिल्प की एक अन्य खूबी यह है कि उनके विशेषण, बिंब प्रतीक आदि क्रिया से जुड़े रहते हैं क्योंकि प्रगतिशील कविता निरंतर संघर्ष की कविता है, इसीलिये उसमें क्रिया की प्रधानता है। केदार की कविता में भी देखना, सुनना बहुत अधिक है – वह प्रत्येक अनुभव को क्रिया से जोड़कर ही अभिव्यक्त करते हैं, जैसे –

मैंने उसको देखा
जब–जब देखा
लोहा देखा
लोहा जैसा
तपते देखा
गलते देखा
ढलते देखा
मैंने उसको
गोली जैसा
चलते देखा।

पहले जब देखा था, सावन था, बादल थे
इससे कम देखा था
अब तो यह फ़ागुन हैं
फूलों में देखा है
रंगों से
गंधों से बाँधे तन देखा है
इससे अब देखा है

कुल मिलाकर केदार की काव्य भाषा सरल सहज है, उसमें चित्रात्मकता ऐन्द्रियकता है उसमें लोकगीतों की अनुगूंज है – और यह भाषा देश की मेहनतकश जनता के सुख दुःख एवं जीवन से सरोकार रखती है।

बोध प्रश्न –4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. केदार जी की कविताओं के शिल्प की सबसे प्रमुख विशेषता कौन–सी है?

.....

.....

.....

2. केदार जी की काव्य भाषा की विशेषताएं संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

.....

4.6 सारांश

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्यांदोलन के एक प्रमुख कवि हैं। आजादी के पूर्व से लेकर आज तक वे अपनी काव्य यात्रा में लगे हुए हैं। उनकी राजनीतिक दृष्टि मार्क्सवादी विचार दर्शन के चिंतन–मनन से प्राप्त की हुई प्रगतिशील राजनीतिक दृष्टि है। केदारनाथ ने राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं, जिनमें इस देश के चालीस वर्षों का राजनीतिक इतिहास कैद है। राजनीतिक कविताओं के अलावा केदार ने प्रकृति, प्रेम और श्रम करते हुए तथा संघर्षशील मानव के बारे में बहुत लिखा है। वास्तव में केदारनाथ अग्रवाल आम जनता के कवि हैं, केदारनाथ अग्रवाल की भाषा सरल, सहज अतः संप्रेषणीय है। प्रगतिशील कवियों की भाषा का सबसे बड़ा गुण संप्रेषणीयता ही होता है। किंतु सरल होते हुए भी यह भाषा बहुत कलात्मक है। केदार अधिकतर मानव संसार के बिंबों का प्रयोग करते हैं। प्राकृतिक बिंब और प्रतीक भी वे मानवीय अनुभूतियों और संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए लाते हैं। केदार में एक खास तरह की स्थानिकता, आँचलिकता है, जिससे उनकी रचनाओं में एक सहजता, अपनी जमीन से जुड़े होने का एहसास और लोकजीवन के विभिन्न रंग मिलते हैं। सारांशतः केदारनाथ अग्रवाल इस देश के श्रमशील मनुष्य के सुख–दुःख की वाणी देने वाले प्रमुख प्रगतिशील कवि हैं।

4.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. उपन्यास, अनुवाद, यात्रा संस्मरण
2. मार्क्सवादी विचारधारा का

बोध प्रश्न –2

1. केदार जी ऐसी राजनीति की तरफदारी करते हैं जो समाज में शोषित जन को उनके अधिकार दिला सके, समाज में भेदभाव को समाप्त करे, मनुष्य–मनुष्य का शोषण न करे।
2. (ख)
3. एक मजदूर है चैतू
   सूरज डूबे, छुट्टी पाके
   जिंदा रहने से उकता के
   ठर्रा पीता है और सो जाता है

बोध प्रश्न–3

- आर पार चौड़े खेतों में
  चारों ओर दिशाएँ घेरे
  लाखों की अगणित संख्या में
  ऊंचा गेहूँ डटा खड़ा है
  ताकत मे मुट्ठी बांधे है
  नोकीले भाले ताने है
  हिम्मत वाली लाल फौज मा
  मर मिटने को मूम रहा है।

- इसलिए उन्हें प्रकृति के वे रूप अधिक भाते हैं जिनमें गति, जीवन, खुलापन, उत्साह और उमंग की अभिव्यक्ति होती है। (क्योंकि केदार जीवनासक्ति के कवि हैं, वे जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखते हैं।)
- केदार का प्रेम वर्णन सामाजिक यथार्थ दृष्टि मे विच्छिन्न नहीं है। अपनी प्रिया पर कविता लिखते हुए वे सामाजिक परिवेश, गाँव, खेत–खलिहान, आँचलिक प्रकृति और अपने परिवेश को नहीं भूलते। बल्कि ये सब उनकी कविता का अंग बन जाते हैं जैसे अपनी प्रिया को गाँव मे लाने के वर्णन में उनका गाँव अपने यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है।

  प्यारी। मेरे जन्म गाँव में
  प्यारी। उसी लड़कपन वाले गाँव में
  प्यारी। उसी पढ़ाई वाले गाँव में
  प्यारी। उसी रामलीला वाले गाँव में
  प्यारी। उसी कमासिन गाँव में
  अपने प्यारे गाँव में
  नैनी से तुमको लाया हूँ।

4. केदार जी का प्रेम स्वकीया प्रेम है
   वो सामाजिक यथार्थ मे विच्छिन्न नहीं है
   केदार जी का प्रेम भावुकता से सना–पगा नहीं है।

बोध प्रश्न –4

1. संप्रेषणीयता केदार जी की कविताओं के शिल्प की प्रमुख विशेषता है।
2. ऐन्द्रियकता, चित्रात्मकता, लयात्मकता

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1. डॉ. रामविलास शर्माः प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

2. अजय तिवारी (सं.) : केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. भगत रावत, राजेन्द्र शर्मा, मनोहर देवलिया (सं.) : जिऊँगा अभी और अभी और, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 नागार्जुन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 पृष्ठभूमि
5.3 जीवन परिचय एवं कृतित्व
5.4 नागार्जुन के काव्य की अन्तर्वस्तु
    5.4.1 सामंती व्यवस्था के खिलाफ
    5.4.2 जीवन की विसंगतियों और अंतर्विरोधों का चित्रण
    5.4.3 राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ
    5.4.4 निजी जीवन प्रसंगों पर लिखी कविताएँ
    5.4.5 प्रकृति–चित्रण
5.5 संरचना शिल्प
    5.5.1 काव्य रूप, काव्य भाषा
5.6 सारांश
5.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
5.8 उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- प्रगतिशील कवि नागार्जुन के युग की पृष्ठभूमि एवं उनके जीवन और कृतित्व के बारे में जान सकेंगी/सकेंगे;
- नागार्जुन की विषयगत काव्य विशेषताओं के बारे में बता सकेंगी/सकेंगे; और
- उनकी कविताओं की शिल्पगत विशेषताओं को जान सकेंगी/सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप एक और प्रगतिशील कवि नागार्जुन के बारे में अध्ययन करेंगे। सबसे पहले हम नागार्जुन की युगीन पृष्ठभूमि को देखेंगे। इसमें आप नागार्जुन के जीवन परिचय और कृतित्व की जानकारी हासिल करेंगे। नागार्जुन का जीवन बहुत वैविध्यपूर्ण रहा है। यायावरी और फक्कड़पन उनके जीवन और व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ हैं। नागार्जुन ने लगभग सारा देश घूमा है, देश और जनता को बहुत करीब से जाना है। गरीब परिवार में पैदा होकर नागार्जुन ने गरीबी को, अभावों को, जीवन की कठिनाइयों को स्वयं झेला है।

अन्तर्वस्तु में आप नागार्जुन की काव्य विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे। नागार्जुन के काव्य की अन्तर्वस्तु का दायरा बहुत बड़ा है। उन्होंने अपने कवि जीवन के लगभग पचास वर्षों में हजार के आसपास कविताएँ लिखी हैं। अरुण कमल उन के काव्य की अन्तर्वस्तु के बारे में लिखते हैं–'एक–एक कतरे को एक–एक कविता को जोड़ने से जो नक्शा बनता है, वह इतना विस्तृत, इतना जन संकुल है कि किसी एक बिंब या सत्र में उनके काव्य लोक को व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह हजार–हजार बाहों वाली कविताएं हैं, हजार दिशाओं को इंगित करती, हजार वस्तुओं को अपनी मुट्ठियों में थामे।' वास्तव में नागार्जुन की काव्य भूमि इतनी व्यापक है कि उसे खंड–खंड करके देख पाना संभव नहीं है। नागार्जुन का काव्य संसार 'मिथिला के रुचिर भूभाग से लेकर मुलुण्ड के अति सुदूर प्रदेश तक फैली हुई काव्य भूमि, बिहार के सामंती उत्पीड़न से लेकर अमरीकी साम्राज्यवाद तक की शोषण–शृंखला, भूमिहीन मजदूरों के दुर्दम संघर्ष से लेकर जूलियन रोजनबर्ग की महान संघर्ष गाथा और नितांत व्यक्तिगत जीवन–प्रसंगों से प्राप्त सुख–दुःख से लेकर बाकी सारे जगत के सुख–दुःख मोतिया नेवले और मधुमती गाय तक के, यह चौहद्दी है नागार्जुन के काव्य–महादेश की।' (अरुण कमल, आलोचना, अंक 56–57, पृष्ठ 27)।

संक्षेप में नागार्जुन की कविताओं का हम राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ, सामंती व्यवस्था के उत्पीड़न के खिलाफ लिखी गयी कविताएँ और मानवीय, निजी संबंध और प्रकृति संबंधी कविताएँ शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे।

संरचना शिल्प के अन्तर्गत आप नागार्जुन के काव्य शिल्प, काव्य भाषा के बारे में पढ़ेंगे। नागार्जुन जैसे विषय–वस्तु के संदर्भ में वैविध्यपूर्ण हैं, वैसे ही शिल्प और भाषा के संदर्भ में भी हैं। उनके बात करने के हजार ढंग हैं। जितने मुँह, उतनी बोली। कभी तो वे निपट पारंपरिक छंद में लिखते हैं तो कभी शुद्ध 'गद्य कविता' लिखते हैं। छंदों के अनेक प्रकार हैं, एक ही छंद की अनेक लयें हैं। एक ही कविता में बार–बार छंद बदल सकता है इसी तरह उनकी भाषा के भी अनेक तेवर हैं।

5.2 पृष्ठभूमि

आईये नागार्जुन की पृष्ठभूमि पर विचार करते हैं –

आजादी से पूर्वः प्रगतिशील काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि नागार्जुन जी का साहित्यक जीवन जब प्रारंभ हुआ उस समय देश अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा पाने का प्रयास कर रहा था। देश में कांग्रेस पार्टी की बागडोर गाँधी जी के हाथ में थी। 1930 कांग्रेस द्वारा चलाए गए आंदोलन की असफलता के बाद बहुत से लोग गाँधीवादी विकल्प ढूँढने लगे थे। कांग्रेस के भीतर सोशलिस्टों का एक दल संगठित हुआ, इस दल ने कांग्रेसी नेताओं का विरोध करते हुए किसान सभाएं की, अनेक कम्युनिस्टों ने मजदूर सभाएं बनायीं – जिनमें कानपुर की मजदूर सभा उल्लेखनीय है।

फिर भी, अंग्रेजों से अखिल भारतीय स्तर पर लोहा लेने के लिये कांग्रेस ही एक मात्र ऐसी पार्टी थी, जिसे व्यापक स्तर पर जनता का समर्थन प्राप्त था। कम्युनिस्ट अभी अपना सुदृढ़ आधार

नहीं बना पाए थे। किन्तु समय–समय पर कांग्रेस की बुर्जुआ नीतियों और दृष्टिकोण की आलोचना करते रहते थे। वाम पक्ष के अधिकांश नेताओं का यह मानना था किसानों को संगठित किए बिना उनका सामंत विरोधी संघर्ष चलाए बिना स्वाधीनता आंदोलन में सफलता नहीं मिल सकती। दूसरी ओर कांग्रेस गाँधी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक तरीके से सभी को अपने साथ लेकर स्वाधीनता प्राप्ति का मार्ग खोज रही थी।

दूसरे महायुद्ध में जर्मनी और जापान की हार के बाद दक्षिणी पूर्वी एशिया में जबर्दस्त क्रांतिकारी जन उभार आया। भारत में बंबई का नाविक विद्रोह (1946) इस जन उभार का प्रतीक है। इस जन उभार के बारे में वामपंथियों का मानना है कि कांग्रेस ने इस जन उभार का समर्थन नहीं किया क्योंकि कांग्रेस क्रांति और सशस्त्र संघर्ष नहीं चाहती थी। यहाँ तक यह बात सही है कि गाँधी जी अहिंसक तरीकों द्वारा ही आजादी प्राप्त करने के प्रयास कर रहे थे। इस प्रयास में वे किसानों, मजदूरों, जमींदारों, पूँजीपतियों सभी को साथ ले रहे थे। वाम पक्ष उनकी इस अहिंसक नीति का विरोध करता रहा है। वस्तुतः कांग्रेस और वाम पक्ष के दृष्टिकोण की भिन्नता ही इस कांग्रेस और वाम पक्ष का केन्द्रबिंदु थी।

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ: आजादी से पूर्व के भारत में एक नया मध्यमवर्ग उभरने लगा था, जो नयी दिशा–दीक्षा प्राप्त कर अपना अलग से अस्तित्व बना रहा था फिर भी समाज के ढाँचे में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ था। कई समाज सुधार आंदोलन चल चुके थे किंतु बाल विवाह, सती प्रथा, जैसी कुप्रथाएँ अभी भी समाज में विद्यमान थी। अंग्रेजी शिक्षा–दीक्षा अंग्रेजों के हितों के लिए केवल बाबू वर्ग का ही निर्माण कर रही थी। किसान मजदूरों की दशा दयनीय थी। किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति की लहर में सभी लोग अपना समर्थन दे रहे थे। यह सामाजिक चेतना जनता में पनप चुकी थी कि अंग्रेजों से छुटकारा पाए बिना इस देश और समाज का उद्धार नहीं हो सकता। अनपढ़ता, गरीबी, कुप्रथाएँ, इन सबको मिटाने के लिए स्वतंत्र भारत का आजाद होना आवश्यक है।

देश की आर्थिक दशा बहुत खराब थी। अंग्रेजों ने शोषण के बल पर इस देश को गरीबी के मुहाने पर ला पटका था। किसान की फसल का आधे से अधिक हिस्सा जमींदार, नवाब और अंग्रेज की जेब में पहुँच जाता था। किसानों मजदूरों की दशा इस अर्थ में भी बहुत दयनीय थी कि उन्हें अंग्रेज हाकिमों और जमींदारों दोनों के शोषण तले पिसना पड़ता था।

साहित्यिक पष्ठभूमि: हिंदी में 'प्रगतिवाद' का आरंभ 1936 के आसपास हुआ था। नागार्जुन जी के साहित्य में प्रवृत्त होने का लगभग यही समय है उस समय हिंदी कविता में छायावाद सिमटने लगा था और यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में प्रगतिवाद आंदोलन उभरने लगा था।

इस प्रकार नागार्जुन के साहित्यिक जीवन का आरंभ ऐसे राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक माहौल में हुआ जब अंग्रेजों से देश को आजाद करवाने के लिए स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ रहा था। आर्थिक रूप से देश जर्जर स्थिति में था और साहित्य में छायावादी कविता की जगह प्रगतिशील कविता ले रही थी।

आजादी के बाद : देश आजाद हुआ। राजनीतिक रूप से शासन सत्ता अपने लोगों के हाथ में आयी। पूरे देश की जनता ने ये उम्मीदें बाँधी हुईं थीं कि आजाद होने पर उनके दुःख–दर्द दूर

होंगे। किसानों, मजदूरों को आशाएँ थीं कि उन्हें जमींदारों, मिल मालिकों के शोषण से छुटकारा मिलेगा, सामाजिक कुप्रथाओं का अंत होगा, किंतु जनता की सारी आशाएं पूरी नहीं हो सकी। इसी दौरान सन् 1962 तथा 1965, 1971 में भारत को तीन युद्धों का भी सामना करना पड़ा जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। जाति प्रथा, शोषण, गरीबी, अशिक्षा जैसी सामाजिक बुराईयाँ अभी तक हमारे समाज में व्यापक स्तर पर विद्यमान हैं। आजादी के बाद का यह भारत भी नागार्जुन जी के कृतित्व की पृष्ठभूमि रहा है। साहित्य में प्रगतिवाद आंदोलन जब शुरू हुआ, उसके समानांतर ही व्यक्तिवादी कविता लिखने का भी एक दौर चला – जिसका नामकरण 'प्रयोगवाद' हुआ। 1936 में जिस प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी– आजादी के बाद वह धीमा पड़ता गया। व्यक्तिवादी कविता ही विभिन्न स्वरों में फूटती रही। प्रगतिशील कविता पृष्ठभूमि में चली गयी। इसका कारण शायद यही रहा कि अधिकांश साहित्यकारों का संबंध सामान्य जनता – किसानों, और मजदूरों से नहीं रहा। अधिकांश लेखक मध्यमवर्ग से ही आए। मध्यमवर्ग ही साहित्य लेखन का मुख्य सरोकार बनता गया। किंतु ऐसी परिस्थितियों में भी प्रतिबद्ध प्रगतिशील रचनाकार नागार्जुन, शील, केदारनाथ, त्रिलोचन आदि निर्द्वन्द भाव से अपने लेखन कर्म में जुटे रहे।

1962 में देश की कम्युनिस्ट पार्टियों में भी विभाजन हो गया। जनवादी संघर्ष के कमजोर होने का एक राजनीतिक कारण यह भी रहा।

5.3 जीवन परिचय एवं कृतित्व

'बाबा' नाम से पुकारे जाने वाले प्रगतिशील जनकवि नागार्जुन (मूल नाम श्री वैद्यनाथ मिश्र) का जन्म कब हुआ उन्हें भी ठीक से नहीं मालूम। 1911 की जून में वे किसी दिन पैदा हुए ऐसा मान लिया जाता है। माँ का देहांत बचपन में ही हो गया, पिता की कई संताने नहीं बचीं। वैद्यनाथ की मान्यता से ये अकेले बचे। नागार्जुन मैथिली ब्राह्मणों के संस्कृत पंडित घराने से हैं। परदादा, पिता सब खेती करते थे, बिहार के दरभंगा प्रांत में नागार्जुन की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही संस्कृ त पाठशाला में हुई। फिर काशी और कलकत्ता में संस्कृत का अध्ययन किया। काशी में रहते हुए ही नागार्जुन ने अवधी, ब्रज, खड़ी बोली का भी अध्ययन किया, मैथिली में वैदेह उपनाम से लिखना भी शुरू कर दिया। पहली बार 1930 में मैथिली में पहली कविता छपी, इसी दौरान 1932 में नागार्जुन का अपराजिता से विवाह हो गया।

घूमने और इधर–उधर भटकने की आदत नागार्जुन को बचपन से ही पड़ गयी थी, सो वे बड़े होकर बहुत घूमे 1934 से 1941 तक लगभग घूंमतू जीवन ही रहा, इस बीच देशाटन किया। लंका गये, बौद्ध धर्म में शिक्षा–दीक्षा ली और बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। 'नागार्जुन' नाम यहीं धारण किया सन् 1936 में। काम चलाऊ अंग्रेजी और पालि भाषा भी यहीं सीखी। 1938 में भारत वापिस आए। बिहार में चल रहे किसान आन्दोलन में शिरकत की। तीन बार जेल गये, जेल से छूट कर 1941 में फिर गृहस्थ बने। उन्हें गांव में रहने के लिए बाध्य किया गया। पड़ोस के शहर मधुबनी, दरभंगा तक उन्हें जाने की इजाजत नहीं थी कि कहीं फिर वे भाग न जाएँ। समाज में सब लोग उन्हें पत्नी त्याग, बौद्ध धर्म में दीक्षित होने और पुनः गृहस्थाश्रम में लौटने पर लांछन लगाते, उनकी कटु आलोचना करते और दूसरी ओर खुफिया पुलिस की निगाह भी उन पर हमेशा लगी रहती।

इसी बीच नागार्जुन ने मैथिली में आठ–आठ पृष्ठों की छोटी–छोटी कविता पुस्तक लिख कर ट्रेन में खुद ही बेचनी शुरू की। जनता क्या चाहती है – यह ठीक से नागार्जुन ने ऐसे ही पहचाना। संस्कृत, पालि, मैथिली में पांडित्य हासिल करने के बाद उन्होंने खुद को जनता से जोड़ लिया। मौखिक परंपरा से भाषा कैसे संस्कारित होती है, यह जाना।

जीविका के लिए पत्नी को लेकर वे फिर पंजाब पहुंचे। 1943 में पिता का स्वर्गवास हो गया तब गाँव में घर का सारा उत्तरदायित्व पत्नी ने अपने कंधों पर ले लिया। नागार्जुन घुमक्कड़ी करते रहे और साहित्य जीवी बन गए। तीन–तीन साल में एक बार गाँव गये, नहीं गये किन्तु घर की जिम्मेवारियों के विषय में हमेशा चिंतित रहे।

कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता भी धारण की किन्तु 1962 में चीनी आक्रमण के बाद सदस्यता छोड़ दी। वे कट्टर मार्क्सवादी नहीं थे, राजनीतिक अर्थ में तो नहीं किन्तु उनकी प्रतिबद्धता बहुत स्पष्ट है। वे शोषित, पीड़ित जनता के खुले पक्षधर थे। बिहार के जयप्रकाश नारायण के आंदोलन में उन्हें फिर जेल हुई। 'नागार्जुन' हमेशा घुंमतु जीवन जीते रहे, जहाँ भी उत्पीड़न होता, जनता का प्यार मिलता, वे तुरंत वहाँ पहुँच जाते।

5.3 कृतित्व

नागार्जुन ने मैथिली, संस्कृत और हिन्दी में काव्य रचना के अलावा उपन्यास, कहानी, निबंध भी लिखे हैं और कुछ अनुवाद भी किए हैं। उनकी प्रकाशित काव्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं।

बूढ़वर	(मैथिली 1941)
विलाप	(मैथिली 1941)
शपथ	(हिन्दी 1948)
चित्रा	(मैथिली 1949)
चना ज़ोर गर्म	(हिन्दी 1952)
युगधारा	(हिन्दी 1953)
खून और शोले	(हिन्दी 1955)
प्रेत का बयान	(हिन्दी 1957)
सतरंगे पंखों वाली	(हिन्दी 1957)
प्यासी पथराई आंखें	(हिन्दी 1962)
पत्रहीन नग्न गाछ	(मैथिली 1967)
अब तो बंद करो हे देवी	(हिन्दी 1971)
तालाब की मछलियाँ	(हिन्दी 1974)
चंदना	(हिन्दी 1976)
तुमने कहा था	(हिन्दी 1980)
हजार–हजार बाहों वाल	(हिन्दी 1981)
पुरानी जूतियों का कोर	(हिन्दी 1983)
रत्न गर्भ	(हिन्दी 1984)

ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या (हिन्दी 1985)
आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने (हिन्दी 1986)

उपन्यासः रतिनाथ की चाची (1984), बलचनमा (1952), वरुण के बेटे (1954), बाबा बटेसर नाथ (1954), दुखमोचन, इमरितिया, उग्रतारा, जमनिया के बाबा, कुंभीपाक (1970), अभिनंदन (1970), नई पौध, पारो (मैथिली एवं हिन्दी दोनों में) (1970)।

कहानी संग्रहः आसमान में चंदा तेरे (1982)।

निबंध संग्रहः अन्नहीनम्, क्रियाहीनम् (1983)।

अनुवादः मेघदूत, गीत गोविंद,विद्यापति की पदावली।

इन ग्रंथों के अलावा नागार्जुन की ढेरों कविताएँ यहाँ–वहाँ पत्र–पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी है, जिनका संकलन होना अभी बाकी है।

नागार्जुन के काव्य का रचनाकाल लगभग पचास वर्षों में फैला हुआ है। इनकी लिखी कविताओं में मुख्य रूप से इस देश की शोषित–पीड़ित जनता के संघर्षों की तमाम–तमाम कथाएँ उनके सुख–दुःख, सत्ता वर्ग के लोलूप भ्रष्टाचारी चेहरों की नंगी सूरतें, भ्रष्ट राजनेताओं पर तीखी टिप्पणियाँ विभिन्न काव्य शैलियों व रूपों में अभिव्यक्त हुई है। इसके अलावा प्रेम, प्रकृति जैसे काव्य के शाश्वत माने जाने वाले विषयों पर भी नागार्जुन ने लिखा है। अपने प्रिय मित्रों, अंग्रेजों और देश–विदेश की कई महान विभूतियों पर भी नागार्जुन ने कविताएँ लिखी हैं। कुल मिला कर इनका कृतित्व इस उपमहाद्वीप की तमाम–तमाम जनता के सरोकारों का महाकाव्य है। वास्तव में वे जनकवि हैं। उन्होंने अपने बारे में खुद भी कहा है – जनकवि हूँ मैं/साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ।

5.4 नागार्जुन के काव्य की अन्तर्वस्तु

जनकवि नागार्जुन के काव्य की अन्तर्वस्तु का दायरा बहुत बड़ा है। भारतीय जनजीवन में आजादी से पहले से लेकर आज तक जो कुछ भी घटा है – वह सब नागार्जुन की कविता में कैद है। सैकड़ों बर्बर गोलीकांड, शोषण, हिंसा, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक दुराचार्य – सब नागार्जुन की वर्गचेतन दृष्टि का निशाना बने हैं। एक ओर तो उन्होंने ऐसी राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं जिन्हें तात्कालिक घटना पर आधारित कविताएँ कहा जा सकता है। दूसरी ओर संघर्षशील मनुष्य की सुख–दुःख गाथा पर अपेक्षतया गंभीर कविताएँ हैं, उन्होंने प्रकृति पर, प्रेम पर भी खूब लिखा है। नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं में और सामंतों, पूँजीपतियों और भ्रष्ट बुद्धिजीवियों पर लिखी हुई कविताओं में व्यंग्य की जो पैनी मार है – वे उन्हें अंग्रेज व्यंग्यकारों की श्रेणी में लाकर खड़ा करती हैं – नागार्जुन ने व्यक्तियों, साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों पर भी कविताएँ लिखी हैं।

यहाँ हम नागार्जुन की विभिन्न विषयों पर लिखी हुई कविताओं का जायजा लेंगे।

5.4.1 सामंती व्यवस्था के खिलाफ

आजादी से पूर्व भारत में लगभग पतनशील सामाजिक ढाँचा था जो नयी शिक्षा–दीक्षा और ज्ञान–विज्ञान की आग से झुलस कर टूट रहा था। फिर भी बड़े–बड़े सामंत, जमींदार, किसानों, मजदूरों का निरंतर खून चूस रहे थे और राष्ट्रीय आंदोलन के बावजूद किसी तरह अपनी सत्ता बनाए रखने का प्रयास कर रहे थे, इसमें उन्हें अंग्रेजों से भी बराबर मदद मिलती थी।

नागार्जुन ने सामंती व्यवस्था के उत्पीड़न, वैभव प्रदर्शन और पतन को अभिव्यक्त करने वाली कई कविताएँ लिखी हैं। निराला पर लिखी एक कविता में उन्होंने निराला की ही दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं –

खुला भेद विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं

यही दो पंक्तियाँ नागार्जुन काव्य की भावात्मक नींव हैं। पूरा नागार्जुन काव्य 'विजयी कहाये हुओं' का भेद खोलता है। नागार्जुन की ऐतिहासिक चेतना और दृष्टि बहुत स्पष्ट और खरी है, जब–जब भी और जहाँ कहीं भी जनता का शोषण होता है, जनता पर अत्याचार होते हैं, नागार्जुन उसकी खिलाफत ही नहीं करते, अपना पक्ष जनता के साथ जाहिर करते हैं।

उनकी एक कविता है 'विजयी के वंशधर', यह कविता पूरी गहराई के साथ सामंती समाज के वैभव प्रदर्शन और उत्पीड़न को अभिव्यक्त करती है, विजयादशमी के दिन का वर्णन है। आज बाबू–बबुआन की जययात्रा निकली है। तेल से पोसी हुई लाठियाँ, जिन्हें लठैत थामे हैं। नीलकण्ठ का दर्शन आज के दिन शुभ माना जाता है, इसलिये बहेलिये नीलकण्ठ को पिंजरे में लाये हैं। राजा राम के वंशज यानि सामंत आज सजधज कर निकलेंगे और पीछे–पीछे रैयत यानि किसान–मजदूर चलेंगे, अर्थात् वानरी सेना। नागार्जुन वर्णन करते हैं–

गुलाबी धोती
सीप की बटनों वाला रेशमी कुर्ता
मलमल की दुपलिया, फूलदार टोपी,
बाटा के पम्प शू
नेवले के मुंह सी मूठ की नफीस छड़ी
बड़ा और छोटा सरकार
लाल साहेब, हीराजी,
मानिक जी, मोती साहेब
बुच्चन जी, बबुअन जी
नूनू जी, बचोल बाबू
हवेली से निकले बनकर सँवर कर।

ये हैं जमींदार। इनकी वेशभूषा का एक–एक ब्यौरा सामंती व्यवस्था को खोल कर रख देता है। गुलाबी, शुभ मानी जाने वाली धोती, सीप के बटनों वाला कुर्ता, नफीस घड़ी। ये बबुअन जो लाठी तक नहीं उठा सकते, आज रावण को मारेंगे, इस तरह नागार्जुन सामंतों की वास्तविक शक्तिहीनता, आडंबर और खोखलेपन को दिखाते हैं। वास्तव में नागार्जुन की यह कविता सामती व्यवस्था और उसके इतिहास का पूर्ण आकलन करती है।

नागार्जुन की एक और कविता है –'तालाब की मछलियाँ', जिसके माध्यम से वे नारी की दासता का बहुत ही मार्मिक वर्णन करते हुए सामंती व्यवस्था की सड़ांध भरी सच्चाईयों का पर्दाफाश करते हैं। कोसी की बाढ़ ने पोखर का मिण्डा तोड़ दिया है और पोखर का पानी कोसी के पानी में मिला जा रहा है। मिथिलावासी पोखर की मछलियों पर टूट पड़े हैं। अचानक बाँध टूटने से ये मछलियाँ कोसी के विराट जल में व्याकुल हो गयी हैं। इस आकस्मिक मुक्ति से वे हतप्रभ हैं, अपनी स्वाभाविक गति ही भूल गयी हैं।

इसके बाद नागार्जुन पोखर का पूरा इतिहास बताते हैं। फिर मछलियाँ जमींदार के अन्तःपुर में पहुँचती हैं। वे अधेड़ मथुरा पाठक की हवेली में पहुंचती हैं जहाँ पाठक की अठारह वर्षीय तीसरी पत्नी उन्हें तलने बैठती है। यहाँ दृश्य बदलता है। कड़ाही में तल रही मछलियाँ पाठक जी की पत्नी से कहती हैं –

हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग वस्तु हैं

इसके बाद नारी की दासता का पूरा इतिहास है। मछलियाँ मुक्त हो गयीं किन्तु नारी अभी भी गुलाम है। मछलियों कहती हैं –

बहुत दिनों पर
पाई हमने छूट
मचने दो यदि मची हुई है हत्या अथवा लूट
वन्या के प्लावन से सहसा पुष्करिणी की
परिधि गयी है टूट

यह सक्रांति का समय है। मुक्ति से ठीक पहले की उथल–पुथल है। इसी तरह नागार्जुन सामंती व्यवस्था का अपनी कविता में भेद खोलते हैं।

5.4.2 जीवन की विसंगतियों और अन्तर्विरोधों का चित्रण

नागार्जुन ने यदि जीवन की ठोस विसंगतियों का सीधा सच्चा चित्रण किया है तो दूसरी ओर जीवन के अन्तर्विरोधों को भी अभिव्यक्ति दी है। उनकी एक कविता है – 'शालवनों के निविड टापू में', इसमें एक प्रसंग है, एक आदिवासी से दियासलाई मांगने का, यह प्रसंग, एक साधारण सी घटना हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन के अनेक अन्तर्विरोधों को खोलती हैं। इसमें दो शब्द आते हैं – राजा और शबरपुत्र। दोनों शब्द हमें इतिहास में राजतंत्र के युग में ले जाते हैं। यह आदिवासी लोकनृत्य पेश करने दिल्ली गया था। नागार्जुन उससे दिल्ली के राजा का नाम पूछते हैं? उसे नहीं मालूम। उसे यह भी नहीं मालूम वो दिल्ली क्यों गया था। उसकी इस

स्थिति का जिम्मेवार कौन है? इसके बाद कवि इस आदिवासी के साथ कुछ दिन रहने की इच्छा प्रकट करता है ताकि इसके बारे में कुछ जान सके किन्तु वह इतनी देर में 'जा चुका था गहरे निविड़ अरण्य की अतल झील के अंदर' इस पंक्ति का एक–एक शब्द उसे इस समाज से उसकी दूरी, अजनबीपन का तीव्र एहसास करा देता है और कवि इसी दुनिया में रह जाता है –

'स्टार्ट हुई हमारी जीप
बेलाडीला वाली उस सड़क पर
दन्तेवाड़ा से 55 किलोमीटर आगे'

नागार्जुन की एक दूसरी कविता है – 'नथुने फुला–फुला के', जीवन में जो कुछ सुंदर है, और जिसका निरंतर व्यवसायीकरण होता जा रहा है, यह कविता उस की भर्त्सना करती है। चलते–चलते अचानक कवि के मित्र उसे बांह मे पकड़ लेते हैं और बताते हैं कि यहाँ मुलुण्ड में किसी मराठी व्यवसायी ने इत्र का कारखाना खोला है, जिससे शाम के वक्त बीसियों किलोमीटर इत्र की सुगंध से नहा उठते हैं। कवि के यह मित्र उस सुगंध मे आनंदित हैं लेकिन कवि को बिल्कुल निस्पंद देख कर विस्मित रह जाते हैं। फिर उनसे कहते हैं –

'आप की गंध चेतना ठस तो नहीं हई
अभी तो सत्तर के न हुए होंगे आप'

यह एक साधारण प्रसंग है। वातावरण में एक कृत्रिम सुगंध फैली है और अध्यापक जैसे लोग सुगंध मे विह्वल हैं, आनंदित हैं किन्तु कवि संज्ञाशून्य हो गया है। उसे चिंता है कि भाव और इन्द्रियबोध के धरातल पर भी हमारा व्यवसायीकरण किया जा रहा है, सच्चा सौंदर्य नष्ट हो रहा है। एक कृत्रिम सौंदर्य की अभिरुचि धीरे–धीरे सभी पर हावी होती जा रही है। नयी पीढ़ी का सांस्कृतिक पतन हो रहा है। कविता की अंतिम पंक्तियाँ बहुत हिकारत मे पतनशील बुद्धिजीवी को प्रस्तुत करती हैं –

अपने तई भरपूर सांस खींची
नथुने फुला–फुला के
वो मुअत्तर हवा भर ली अंदर

नथुने फुला–फुला के – ये शब्द भयंकर तिरस्कार और घृणा से भरे हुए हैं। नागार्जुन ने शुरू में और बाद में भी ऐसी कविताएं लिखीं जो सामाजिक अन्तर्विरोधों और जीवन की विसंगतियों का पर्दाफाश करती हैं किन्तु बाद में उनकी ऐसी कविताओं की संख्या कम होती गयी। पूंजीवाद शोषण आरंभ हुआ, जीवन और जटिल हुआ। बाद की अपनी कविताओं में उन्होंने प्रमुख रूप से राजनीतिक घटनाओं को अपनी कविता का विषय बनाया है।

बोध प्रश्न– 1
निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. नागार्जुन की किन्हीं चार काव्य रचनाओं के नाम बताइये।

.....

.....

.....

.....

2. नागार्जुन ने काव्य के अलावा और साहित्य की किन–किन विधाओं में रचना की है?

.....

.....

.....

.....

3. नागार्जुन ने किस कविता में नारी की दासता का वर्णन किया है?

.....

.....

.....

.....

4. नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ दो प्रकार की हैं, ये दो प्रकार कौन–कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

5. नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ किसी विशेष विचारधारा के आधार पर नहीं बल्कि कामनसेंस पर आधारित हैं। संक्षेप में टिप्पणी कीजिये।

.....

.....

.....

.....

6. नागार्जुन किस राजनीतिक विचारधारा को मानते हैं?

.....

.....

.....

.....

7. 'मेले नाम तेले नाम' काव्य पंक्तियाँ नागार्जुन ने किस देश की जनता के संघर्षों के पक्ष में लिखी हैं?

.....

.....

.....

.....

5.4.3 राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ

नागार्जुन की राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ आज़ाद भारत के राजनीतिक जीवन की लगभग पूर्ण अभिव्यक्ति है अर्थात् आज़ाद भारत के राजनीतिक वातावरण में आज तक जो कुछ भी महत्वपूर्ण घटा है, ये कविताएँ उसका पूरा–पूरा लेखा–जोखा प्रस्तुत करती हैं। यदि कविता वास्तव में समकालीन जीवन में कोई प्रत्यक्ष भूमिका अदा करती है तो नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं ने यह काम बखूबी किया है। दूसरी बात यह है कि यदि कविता की कोई तात्कालिक भूमिका होती है तो हिन्दी कविता में उसी तरह की होगी, जिस तरह की भूमिका नागार्जुन की कविता निभाती है। मायकोव्स्की का कहना था कि कविता नाटकघरों और स्टेडियम में गूंजनी चाहिए, रेडियो से लगातार फूटनी चाहिए, अखबारों की सुर्खियाँ बननी चाहिए, पर्चों, पोस्टरों और यहाँ तक कि मिठाई के डब्बों पर मौजूद रहनी चाहिए। नागार्जुन ने हिन्दी कविता को इस योग्य बनाया कि मायकोव्स्की की यह इच्छा वह पूरी कर सके। उन्होंने बार–बार अपने को जनकवि कहा है। उनकी कविता को हजारों लोगों ने जनसभाओं में सुना है, उनकी कई काव्य पंक्तियाँ नारा बन चुकी हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी कविताएँ बहुत आसानी से जनता की जुबान पर चढ़ जाती हैं।

नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ दो प्रकार की हैं – एक सरकार और शोषण तंत्र के तमाम भागीदारों के खिलाफ लिखी गयी कविताएँ और दूसरी मेहनतकश, संघर्षरत जनता और उस के संघर्षों के पक्ष में।

क) **शोषण के खिलाफ:** शोषण तंत्र के खिलाफ लिखी गयीं अपनी राजनीतिक कविताओं में नागार्जुन शोषण समर्थक चरित्रों के लिये अक्सर जानवरों के बिम्बों का प्रयोग करते हैं। वे एक दूसरे से कुर्सी के लिए लड़ते–झगड़ते हैं। नागार्जुन ने शासन के ऐसे जन–प्रतिनिधियों का व्यंग्य चित्र नौटंकी की परिचित धुन और शब्दावली में खींचा है –

स्वेत–स्याम–तरनार अखियाँ निहार के
सिण्डकेटी प्रभुओं की पग धूर झार के
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के
खिले हैं दाने ज्यूँ अनार के
आये दिन बहार के।

ये जनप्रतिनिधि चापलूसी करते (दुम में बल दो, गालियाँ बकते, वह अंदर से बांस करेंगे, मैं बाहर से बांस करूंगा, अवसरवादी) एक दूसरे का गुह्य अंग सूंघ रहे हैं, गंदगी से घिरे लोग (फैल गया है दिव्य मूत्र का लवण सरोवार) कुत्सित लोग हैं।

नागार्जुन ने शासकों के सभी छल–छद्मों का पर्दाफाश किया है, नेहरू से लेकर इंदिरा गांधी और मोरार जी देसाई तक के छल–छद्मों की इस व्यवस्था में वह सड़न देख चुके हैं। इसलिये बड़े विश्वास के साथ वे घोषणा करते हैं, 'ताशों में ही बचेंगे रहेंगे अब तो राजा–रानी।'

नागार्जुन ने राजनीतिक घटनाओं और व्यक्तियों पर इस तरह से लिखा है मानों वे व्यक्ति, व्यक्ति नहीं, कोई जीवन प्रसंग है या घटना है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के अनेक नेता उनके काव्य अलबम में अनेक मुद्राओं में मौजूद हैं। न सिर्फ भारतीय नेताओं की, बल्कि उनके विदेशी आकाओं की छवि भी इन्होंने आंकी है –आइजन हावर, जॉन्सन इत्यादि की। टीटो और हुआ और रजनी पामदत्त को भी नहीं छोड़ा। नागार्जुन को जहाँ कहीं भी शक हुआ कि इस नेता की छवि जनता के हक में नहीं जा रही है – वे तुरंत उसके खिलाफ खड़े हो गये।

नागार्जुन की तमाम राजनीतिक कविताएँ किसी विशेष विचारधारा के आधार पर नहीं बल्कि बहुत ही जबरदस्त कॉमनसेंस पर आधारित हैं। ऐसा नहीं है कि वे किसी विचारधारा पर विश्वास नहीं करते – करते हैं – बहुत ही मोटे शब्दों में कहें तो उन्हें मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिशील कवि कहा जा सकता है। किन्तु वे विचारधारा में बद्ध नहीं हैं इसलिये बहुत बार उनकी राजनीतिक दृष्टि साफ नहीं रही है। 'तुम रह जाते दस साल 'और' कविता में उनकी सहानुभूति ऐसे लोगों के साथ भी है जो घोर प्रतिक्रियावादी हैं।

ख) **जन संघर्ष और जनता के पक्ष में** : नागार्जुन ने बहुत बड़ी संख्या में मेहनतकश लोगों की तबाह जिंदगी और उनके राजनीतिक संघर्षों पर कविताएं लिखी हैं। जहाँ कहीं भी जनता शोषण, हिंसा का प्रतिकार करती है या संघर्ष में कूदती है, वे पूरे मन से उसे समर्थन देते हैं। चाहे वह सन् 1948 का तेलंगाना विद्रोह हो, नक्सलवादी आंदोलन हो या एमरजेंसी से मुक्त होने के लिये जनता का संघर्ष और छटपटाहट हो। देश में ही नहीं, विदेशी जनता के प्रति भी उनकी सहानुभूति बराबर रही है। जूलियन रोजनबर्ग का संघर्ष, नेपाली जनता का संघर्ष – नागार्जुन इनके साथ रहे हैं – इन्हें अपना समर्थन देते रहे हैं। वियतनामी जनता के संघर्षों का भी नागार्जुन ने साथ दिया। नागार्जुन का यह साधारण सा सिद्धांत रहा है – दुश्मनों के लिये घृणा और दोस्तों से प्यार। जनता उनकी दोस्त है और जनता के शोषक उनके दुश्मन।

नागार्जुन की आशाओं का प्राण केंद्र है जनता, जनता में इतने गहरे विश्वास के कारण ही नागार्जुन सर्वहारा का, शोषण में पिसती हई जनता की मुक्ति का स्वप्न देखते हैं। उनकी एक कविता है 'वह कौन था'। उसमें वे कहते हैं –

आज बंधन–मोक्ष के त्यौहार का आरंभ होता है
उपद्रव–उत्पात कह कर कुबेरों का वर्ग रोता है

यह कविता सन् 1948 में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा कई जगह किये गये सशस्त्र विद्रोह का समर्थन करती है –

हे अपरिचित भूमिगत, अज्ञातवासी
निष्कण्टक करो इस कण्टकावृत भूमि को
अपनी परिधि का करो तुम प्रस्तार
हे नवशक्ति!

सन् 1971 में वियतनाम की जनता के संघर्ष में वे अपना पक्ष और अपनी सहानुभूति देते हैं –

सुने इन्हीं के कानों से तुतलाहट में गीले बोल,
तीन साल वाले बच्चों के प्यारे बोल, रसीले बोल

'मेले नाम तेले नाम
बिएनाम बिएनाम
मेले नाम तेले नाम
बिएनाम बिएनाम'

मैंने सोचाः
निर्भय होकर शोषण की बुनियादें यह खोदेंगे

मैंने सोचाः बेबस बूढ़े विप्लवियों का कालिख यह धो देंगे
('रहे गूँजते बड़ी देर तक')

जनता की अदम्य शक्ति में उनका पूरा विश्वास है। जनता कष्ट में है, तबाह है, फिर भी उसका जो चित्र उनमें मिलता है, वह उदात्त है। जनता अपनी पूरी गरिमा के साथ उनके काव्य में मौजूद है। उनकी एक अन्य कविता है – 'शासन की बंदूक' जिसमें सत्ता द्वारा किये जा रहे दमन का आतंक तो है ही किन्तु जनता और जनता के अदम्य साहस की अभिव्यक्ति भी है –

खड़ी हो गयी चाँप कर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट–सी शासन की बंदूक

उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक
जिसमें कानी हो गयी शासन की बंदूक

सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा की चूक
जहाँ–तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक

जली ठूँठ पर बैठ कर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

5.4.4 निजी जीवन–प्रसंगों पर लिखी कविताएँ

नागार्जुन ने निजी जीवन प्रसंगो पर भी अनेक कविताएँ लिखी हैं। जैसे 'सिंदूर तिलकित भाल', 'प्रत्यावर्तन' ये दोनों कविताएँ पति–पत्नी संबंधों को लेकर लिखी गयी कविताएं हैं। पत्नी प्रेम और गृहस्थ जीवन के आंतरिक सौंदर्य की इनमें अद्‌भुत ढंग से अभिव्यक्ति हुई है। वर्षों तक पत्नी और गृहस्थी की चिंता न करने से उत्पन्न घोर ग्लानि और पश्चाताप, घर की याद और स्थिर शांत जीवन की इच्छा इन दोनों कविताओं में पूरी शक्ति से अभिव्यक्त हुई है –

तभी तो तुम याद आती प्राण
हो गया हूँ नहीं पाषाण!
याद आते स्वजन

जिनकी स्नेह से भीगी अमृतमय आँख
स्मृति विहंगम की कभी थकने न देगी पाँख (सिंदूर तिलकित भाल)

आज तेरी गोद में यह शीश रख कर
क्या बताऊँ मैं कि जो विश्राम पाया। (प्रत्यावर्तन)

एक अन्य कविता है 'यह दंतुरित मुस्कान' जो पुत्र–प्रेम की कविता है –

यह दंतुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान

नागार्जुन को बच्चों और तरूणों से बहुत प्रेम है। 'तरूण' शब्द बार–बार उनकी कविताओं में आता है। वे नौजवानों के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार हैं। उन्होंने यहाँ तक लिखा है –

इन निर्बल बाहों का यदि उपहास तुम्हारा
क्षणिक मनोरंजन करता हो
खुश होंगे हम

इससे बढ़ कर प्रेम और त्याग की अभिव्यक्ति दुर्लभ है।

एक कविता है 'क्या अजीब नेचर पाया हैं' यह कविता एक युवती की आंतरिक उदासी, अकेलेपन और अकेलेपन से लड़ने की कोशिश को बहुत ही गहरायी से व्यक्त करती है। 'आओ प्रिय आओ' में मित्र के प्रति प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति हुई है। मित्र से बोलचाल बंद है और नागार्जुन उदास हैं।

5.4.5 प्रकृति चित्रण

नागार्जुन ने बहुत सारी कविताएँ प्रकृति पर, विशेष कर बादलों और वर्षा ऋतु पर लिखी हैं। बादल उन्हें पागल कर देते हैं। बादलों को उन्होंने अनेक रूपों में देखा है। उनकी एक बहुत प्रसिद्ध कविता है – 'बादल को घिरते देखा है' जिसमें हिमालय, हिमालय की घाटी का वर्णन और बादलों के आने और बरसने का स्वाभाविक वर्णन है। यह वर्णन काल्पनिक नहीं है बल्कि अनुभव पर आधारित है।

तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी–बड़ी कई झीले हैं
उनके श्यामल–नील सलिल में
समतल देशों से आ–आ कर
पावस की उमस से आकुल
तिक्त मधुर विसतन्तु खोजते
हँसों को तिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है

प्रकृति से नागार्जुन को इतना प्रेम है कि कई बार तो यह प्रेम पूजा की हद तक पहुँच जाता है। उनकी एक अन्य कविता है – 'सिन्धु नद' जिसमें सिंधु नदी के माध्यम से वे मुक्ति का, विराटता का स्वप्न देखते हैं –

हम पराधीन तुम हो स्वतंत्र
सिखलाते जाओ नया मंत्र
हे हिमगिरि के साकार भाव
डूबे न हमारी भरी नाव

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी रचनाओं में प्रकृति अपने सारे रंगों, मद्राओं के साथ आई है। प्रकृति के साधारण–असाधारण सारे रूप उनके यहाँ हैं, उसका मौंदर्य और उसकी कुरूपता दोनों ही उन्हें प्रिय है, बसंत, शरद और हेमंत ऋतु ही नहीं बल्कि ग्रीष्म, शिशिर और पावस से भी उन्हें उतना ही प्रेम है। पावस तो उन्हें बहुत प्रिय है। उसके कारण आने वाली बाढ़ तथा महमारियों का चित्रण भी वे करते हैं, जनता के कष्ट से व्यथित भी होते हैं, परन्तु पावस के प्रति उनकी ममता कम नहीं होती।

5.5 संरचना शिल्प

नागार्जुन की कविताओं की संरचना और शिल्प बहुत वैविध्यपूर्ण है। वे अपनी कविताओं में और कभी–कभी एक ही कविता में इतने छंद, इतने ढंग और इतनी शैलियों का इस्तेमाल करते हैं कि यह जानना कठिन हो जाता है कि उनके शिल्प की केन्द्रीय प्रकृति कौन सी है। व्यंग्य की तेज धार उनकी राजनीतिक कविताओं के शिल्प की प्रमुख विशेषता है। नामवर सिंह, नागार्जुन के व्यंग्य को देख कर उन्हें कबीर के बाद हिन्दी का सबसे बड़ा व्यंग्यकार मानते हैं। अपनी एक कविता में नागार्जुन स्वयं भी कहते हैं 'हमने कबीर का पद ही तो धोखा है।' नागार्जुन के व्यंग्य के विषय ही नहीं काव्य रूप भी विविध हैं। जैसे लोक धुनों की तर्ज पर रचे गये व्यंग्य, जैसे–

तीनों बंदर बाप के
बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के

या सन् 1954 में लिखे गये झंडा गीत का उदाहरण –

'दस हजार, दस लाख मरें, पर झंडा ऊँचा रहे हमारा।
कुछ हो, कांग्रेसी शासन का डण्डा ऊँचा रहे हमारा।

शासन के ऐसे जनप्रतिनिधियों का व्यंग्य चित्र नौटंकी की परिचित धुन और शब्दावली में इस प्रकार खींचा गया है –

लौटे हैं कल दिल्ली से टिकट मार के
खिले हैं दाने ज्यों अनार के
आये दिन बहार के।

नागार्जुन के व्यंग्य को उनका आत्म व्यंग्य और भी विश्वसनीय बनाता है। नागार्जुन जितने निर्मम औरों के प्रति हैं, उससे किसी तरह कम निर्मम अपने प्रति नहीं हैं। 'पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने' शीर्षक कविता में बहुत दिनों के बाद गाँव में उगते सूरज को देखकर कहते हैं –'सोते ही बिता देता हूँ शत–शत प्रभात/छूट सा गया है जनपदों का स्पर्श।' (हाय रे आंचलिक कथाकार) अंतिम पंक्ति का व्यंग्य आत्मग्लानि की भावुकता को और गहरा कर देता है।

नागार्जुन के यहाँ आपको गीत भी मिलेंगे, छंदों में लिखी गई कविताएँ भी, विभिन्न शैलियों में किये गये अनेकों प्रयोग भी। वस्तुतः नागार्जुन के काव्य का कोई एक रूप नहीं है। इस देश की भौगोलिक, सांस्कृतिक विभिन्नताओं की तरह ही उनके अनेकों काव्य रूप हैं। दोहे, गीत, छंदबद्ध कविता, मुक्तक और विभिन्न लोकधुनों पर रचे गये व्यंग्यों की उनके यहाँ भरमार है। छंदबद्ध कविता में कभी तो पूरी कविता में एक ही छंद और लय मिल जायेगी, कभी एक ही कविता में छंद बदल जायेगा किन्तु ये सारे काव्य रूप कविता को पाठक और जन–समुदाय तक सम्प्रेषित करने के लिए, अर्थ को उन तक सारगर्भित ढंग से पहुँचाने के लिए ही नागार्जुन इस्तेमाल करते हैं।

नागार्जुन की काव्य भाषा भी उनके काव्य रूप और शिल्प की तरह बहत वैविध्यपूर्ण है। अरुण कमल के शब्दों में –'नागार्जुन को पढ़ने का अर्थ है हिन्दी भाषा के वास्तविक जगत में लौटना, हिन्दी के निजी स्वरूप और संस्कारों से परिचित होना। भाषा के इतने रूप, बोलियों के इतने 'मिक्सचर' उनकी कविताओं में मिलते हैं कि यदि उनके काव्य के अन्य प्रसंगों को छोड़ भी दें तो सिर्फ अपनी भाषा के लिये वे हमेशा–हमेशा के लिये महत्वपूर्ण बने रहेंगे। शब्दों को वे इस तरह फेंटते हैं, जैसे ताश के पत्ते। फेंट कर कहीं से काट लिया। (आलोचना, अंक 55–56, पृ. 28) नागार्जुन की भाषा में बोलियों, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी के अनेक शब्द आते हैं। ये वे शब्द हैं जो विभिन्न अंचलों में बोली जाने वाली खड़ी बोली में घुल–मिल गये हैं। इस अर्थ में उनकी भाषा बेहद लचीली और समावेशी है। उसके तल में बोलियों की सहस्रधारा का अन्तरप्रवाह मौजूद है। वह निरंतर विस्तृत और समृद्ध होती भाषा है। डॉ. रामविलास शर्मा ने बहुत सटीक शब्दों में नागार्जुन की काव्यभाषा की विशेषताओं को एक ही पंक्ति में बहुत संक्षेप में बता दिया है – 'हिन्दी भाषी प्रदेश के किसान और मजदूर जिस तरह की भाषा आसानी से समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है'। भारतेंदु पर लिखी कविता में नागार्जुन ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है – हिन्दी की है असली रीढ़, गवाँरू बोली।

बोध प्रश्न– 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. 'सिंदूर तिलकित भाल' और 'प्रत्यावर्तन' नागार्जुन की ये तीनों कविताएं किस विषय को लेकर लिखी गयी हैं?

   .....

   .....

   .....

   .....

2. नागार्जुन का प्रकृति–चित्रण अनुभव पर आधारित है, काल्पनिक नहीं, संक्षेप में टिप्पणी कीजिये।

.....

.....

.....

.....

3. नागार्जुन ने अपनी कविताओं में किस काव्य रूप को अपनाया है और क्यों? संक्षेप में बताइये।

.....

.....

.....

.....

4. नागार्जुन की काव्य भाषा कैसी है? संक्षेप में बताइये।

.....

.....

.....

.....

5.6 सारांश

नागार्जुन आजादी से पूर्व से रचनाकर्म में संलग्न हैं। उन्होंने काव्य रचना के साथ–साथ उपन्यास भी लिखे हैं। प्रकृति से वे घुमक्कड़ और यायावर हैं। उन्होंने लगभग सारे देश का भ्रमण किया है। उन्होंने मैथिली में लिखना शुरू किया था किन्तु बाद में वे हिंदी में लिखने लगे। किसी भी राजनीतिक विचारधारा का हूबहू अनुकरण न करते हए भी उनकी प्रतिबद्धता व्यापक रूप से मार्क्सवादी विचारधारा में है क्योंकि यह विचारधारा वर्गाधारित समाज में उनका पक्ष लेती है, जो शोषित हैं। इसलिये नागार्जुन ने राजनीतिक कविताओं में सत्ताधारी, शोषण में लिप्त एवं अपने लाभ के लिये गरीबों का खून चूसने वाले नेताओं, को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। चरमराती सामंती व्यवस्था के अवशेष – जमींदार, सामंत, बड़े–बड़े ताल्लुकेदार एवं नवाब भी उनके व्यंग्य का निशाना बने हैं। नागार्जुन की ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक यथार्थ को परखने की दृष्टि बहुत पैनी है। वे किसानों, मजदूरों का पक्ष तो लेते हैं किन्तु उनके जीवन के अन्तर्विरोधों को भी नजरदांज नहीं करते। सामाजिक अन्तर्विरोधों को उघाड़ती उनकी कविताओं में मध्यवर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्ग भी शामिल है। नागार्जुन ने भारतीय नेताओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं तथा अपने मित्रों को भी अपनी कविताओं में याद किया है। इसके अलावा प्रकृति पर नागार्जुन ने बहुत कविताएं लिखी हैं। प्रकृति में उन्हें बादल एवं वर्षा बहुत प्रिय हैं क्योंकि बादल ही किसान के जीवन की आस है। पत्नी, पुत्र, मित्र अर्थात् निजी संबंधों पर भी उन्होंने लिखा है।

नागार्जुन की कविता के अनेकों काव्य रूप हैं। उन्होंने कई–कई छंदों, शैलियों में लिखा है। उनके शिल्प की सबसे बड़ी खूबी व्यंग्य है। उनकी काव्य भाषा इतनी संप्रेषणीय है कि रामविलास शर्मा का यह कथन कि उनकी भाषा वही भाषा है जो किसान–मजदूरों की समझ में आती है, अक्षरशः सार्थक है। वस्तुतः नागार्जुन सही अर्थों में जनकवि हैं।

5.7 शब्दावली

वामपंथी बलः आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में मेहनत करने वालों का समर्थन करने वाले राजनीतिक दल, जो पूँजी पर कुछ व्यक्तियों के अधिकार के विरोधी होते हैं।
सविनय अवज्ञा आंदोलनः गाँधी जी द्वारा 1930 में चलाया गया आंदोलन।
लगान बंदी आंदोलनः 1930 के आंदोलन के दौरान देश के कुछ प्रांतों में जैसे संयुक्त प्रांत और गुजरात में किसानों ने जमींदारों को लगान देना बंद कर दिया था।
किसान सभाः 1936 में स्थापित किसानों का अखिल भारतीय संगठन।
बंगाल का अकालः 1943 में पड़ा बंगाल का प्रसिद्ध अकाल जिसमें लाखों लोग मारे गये थे।
नौ सेना विद्रोहः 1946 में बंबई में भारतीय नौ सेना के सैनिकों ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह किया था – यही इतिहास में नौ सेना विद्रोह कहलाता है।
अभिधाः शब्द का वह अर्थ जो कोश के अनुसार हो, उसे वाच्यार्थ कहते है और शब्द की शक्ति को अभिधा कहते हैं।
जीवनासक्तिः जीवन के प्रति आसक्ति।
आदर्शवादः जीवन और जगत को देखने की भाववादी दृष्टि। हिंदी साहित्य में आदर्शवाद, यथार्थवाद की विरोधी विचारधारा भी मानी जाती है। यहाँ जीवन के यथार्थ की बजाए आदर्श रूप पर बल दिया जाता है।
यथार्थवादः जीवन की वास्तविकता को उसके पूरे परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने वाली विचारधारा।
कालातीतः काल से परे
विपुलः बहुत
सामाजिक विषमताः समाज के विभिन्न समुदायों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आधार पर जो अंतर होता है उसे ही सामाजिक विषमता कहते हैं।
अगस्त्यः हिंदू पौराणिक ऋषि जिनके बारे में माना जाता है कि उन्होंने एक ही घूंट में सारा समुद्र पी लिया था।
पांडुरः पीला
मनहरः मनोहर
यथास्थितिवादीः जो परिवर्तन का विरोधी हो।
स्वेच्छाचारीः जो सामाजिक नियमों, आचारों को न मानता हो और अपने मन के अनुसार कार्य करता हो। **वांछितः** जो स्वीकार्य हो।
ऐन्द्रिक क्षमताः इंद्रियों द्वारा ग्रहण करने की क्षमता।
कपिशः हनुमान
ज्योत्स्नाः चाँदनी
कदली : केला
अकुण्ठः बिना कुण्ठा के।

आत्मभर्त्सना: अपनी आलोचना करना
बर्जुआ नीति: पूँजीवाद की पक्षधर नीति
समाजवादी व्यवस्था: ऐसी व्यवस्था जिसमें पूँजी पर समाज का अधिकार हो।
साम्राज्यवादी शक्तियाँ :वे देश जो राजनीतिक, आर्थिक या भौगोलिक दृष्टि से दूसरे देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करते हों।
पूंजीवादी शक्तियाँ : वे देश जो पूँजी पर समाज के आधिपत्य के खिलाफ हों। तथा जहाँ पर पूँजी पर व्यक्तिगत अधिकार की मान्यता प्राप्त हो।
त्याज्य: त्यागा हुआ
स्वकीया प्रेम: अपनी पत्नी से प्रेम।
परकीय प्रेम: पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से प्रेम करना
अवनी: धरती
वन्या: वन की
पुष्करिणी: छोटे तालाब

5.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न –1

1. सतरंगे पंखों वाली, प्रेत का बयान, चना जोर गरम, तालाब की मछलियाँ
2. उपन्यास, कहानी, निबंध, अनुवाद
3. तालाब की मछलियाँ
4. क) सरकार और शोषण तंत्र के भागीदारों के खिलाफ
   ख) मेहनतकश संघर्षरत जनता के पक्ष में
5. नागार्जुन की कविताएँ किसी भी राजनीतिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए नहीं चलती हैं। जिस विचारधारा को वे सही मानते हैं यदि वो विचारधारा भी जनता के विरोध में जाने लगे तो वे सीना तान कर उसका भी विरोध करते हैं। अर्थात् उनकी कविताएँ इस कॉमनसेंस पर आधारित हैं कि जनता और शोषण को दूर करने के लिये किए गए जनसंघर्षों का जो भी विचारधारा साथ देती है, वे उसी के साथ होते हैं। इसीलिये जब बिहार में जयप्रकाश नारायण का आंदोलन एक व्यापक जनआंदोलन में बदल गया तब नागार्जुन ने उसका पक्ष लिया।
6. मार्क्सवादी
7. वियतनाम

बोध प्रश्न –2

1. ये दोनों कविताएँ पति–पत्नी संबंधों को लेकर लिखी गयी हैं।
2. नागार्जुन यायावर हैं, घुमक्कड़ हैं – उन्होंने लगभग सारा देश घूमा है। इसलिये उनका प्रकृति चित्रण भी उनके अपने अनुभवों पर आधारित है। जैसे 'बादल को घिरते देखा है' कविता में वे हिमालय पर्वत पर फिरते हुए बादलों का ही चित्रण नहीं करते बल्कि हिमालय की घाटी की वनस्पति, वहाँ के लोगों के ब्यौरे भी देते चलते हैं। अर्थात् नागार्जुन अपने अनुभवों को ही कविता में ढाल कर प्रस्तुत करते हैं।

3. नागार्जुन की कविताओं का कोई प्रमुख काव्य रूप नहीं है। उनके यहाँ विभिन्न काव्य रूप मिलते हैं। गीत, मुक्तक, लम्बी कविताएँ, छंदों बद्ध कविताएँ अर्थात् वे किसी एक काव्यरूप में बंध कर नहीं लिखते। इसलिए छंदोबद्ध कविता में वे अपनी इच्छा से छंद बदल सकते हैं, एक ही कविता कई–कई छंदों में हो सकती है। वास्तव में नागार्जुन की कविताओं के काव्य रूप वैविध्यमय है।
4. नागार्जुन की काव्यभाषा सरल, सहज और ऐसी संप्रेषणीय भाषा है जो आम जनता की समझ में आ जाए। उनकी भाषा में कई बोलियों के, अंग्रेजी, संस्कृत और हिंदी के शब्द गुंथे हुए हैं। वास्तव में यह मजदूरों, किसानों की समझ में आने वाली भाषा है।

5.9 उपयोगी पुस्तकें

1. अजय तिवारी, नागार्जुन और उनकी कविता।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 रामधारी सिंह 'दिनकर'

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 पृष्ठभूमि
6.3 राष्ट्रकवि दिनकर
    6.3.1 कवि परिचय
    6.3.2 रचनाएँ
6.4 दिनकर साहित्य : प्रमुख प्रवृत्तियाँ
    6.4.1 राष्ट्रीय चेतना
    6.4.2 सामाजिक चेतना
    6.4.3 सांस्कृतिक चेतना
6.5 सारांश
6.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
6.8 उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप कविवर दिनकर का अध्ययन करेंगे। इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- दिनकर के समय की पृष्ठभूमि का विश्लेषण कर सकेंगी/सकेंगे,
- दिनकर के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में बता सकेंगी/सकेंगे,
- दिनकर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से देश को राष्ट्रीय एवं सामाजिक स्तर पर किस प्रकार नई राह दिखाई उसका विश्लेषण कर सकेंगी/ सकेंगे, और
- उनकी महत्वपूर्ण कृति रश्मिरथी, सामधेनी तथा हारे को हरिराम के कुछ अंश का वाचन कर सकेंगी/सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस खंड में आप उन हिंदी कवियों का अध्ययन कर रहे हैं जिन्होंने राष्ट्रीय और सामाजिक क्षेत्र में देश को एक नए युग की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह इकाई ऐसे ही एक राष्ट्रकवि पर है जिन्होंने अपनी लेखनी द्वारा राष्ट्र के नवनिर्माण में अथक प्रयास किया। समाज की सड़ी गली मान्यताओं से किस प्रकार राष्ट्र कमजोर होता है, किस प्रकार अलोकप्रिय मान्यताएँ व्यक्ति एवं राष्ट्र के विकास में बाधक होती हैं उसका यथार्थ रूप उनकी रचनाओं में

देखने को मिलता है। रचनाकार अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। युग में घट रही घटनाएँ साहित्यकार को प्रेरित करती हैं। दिनकर भी अपने समय में घट रही घटनाओं से प्रभावित हुए। ऐसा उन्होंने कई जगह स्वयं भी लिखा है। पाठ में हम ये देखेंगे कि किस प्रकार परिस्थितियों ने कवि को प्रभावित किया। दिनकर राष्ट्रकवि थे उनकी रचनाएँ जहाँ भारत की गौरव गाथा से भरी हुई हैं वहीं तत्कालीन जनता को प्रेरित भी करती थी, कवि देश की परिस्थितियों के अनुकूल रचना कर रहे थे। राष्ट्र की उन्नति के लिए जहाँ जरूरी था देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त करना, वहीं दूसरी ओर अंधविश्वास एवं रूढ़ी से ग्रस्त भारतीय समाज को मुक्ति दिलाना भी था। हम पाठ में देखेंगे कि किस प्रकार दिनकर ने इन दो उद्देश्यों के लिए रचनाएँ की। उनका साहित्य विषय वस्तु एवं शिल्प विधान की दृष्टि से उत्कृष्ट है। शिल्प का प्रयोग भी उन्होंने अपने उद्देश्य के लिए किया है। भाषा, विषयवस्तु आदि पर चर्चा करके हम पायेंगे कि किस प्रकार कवि अपने उद्देश्यों में सफल रहा है। आइए पहले उन परिस्थतियों का अवलोकन करें जिनमें दिनकर ने रचनाएँ की।

6.2 पृष्ठभूमि

राजनीतिक पृष्ठ भूमि में दिनकर का समय विश्व में उथल–पुथल का समय था। इस काल खण्ड में विश्व युद्ध भी हुए और कई परतंत्र देशों में क्रांतियाँ भी हुई। भारत में यह समय स्वतंत्रता आंदोलन का था। कांग्रेस के द्वारा जन आंदोलन तो चलाया जा रहा था लेकिन इसमें भी दो दल थे एक परंपरावादियों का और दूसरा प्रगतिशील लोगों का। जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाष चंद्र बोस जैसे नेताओं के नेतृत्व में उत्तर भारत के युवक देश के लिए मर मिटने को तैयार हो गए थे। युवकों के क्रांतिकारी कार्यों से जहाँ जनता में जोश बढ़ता जा रहा था वहीं ब्रिटिश सरकार आंदोलन को कुचलने के लिए सख्ती से कार्य कर रही थी। गाँधी जी के आगमन से आंदोलन ग्राम–ग्राम तक फैलने लगा।

रौल टएक्ट–जलियाँवाला कांड से जहाँ देश में तूफान मच गया वहीं राष्ट्र एक सूत्र में बंध गया। भारतीय जनता विदेशी सत्ता के खिलाफ एकजुट होकर आंदोलन करने लगी। जलियाँवाला बाग कांड की जाँच के लिए जो हंटर–कमेटी नियुक्त हुई उसने निष्पक्ष निर्णय नहीं दिया फलतः देश में असंतोष फैल गया। कई जगह इस फैसले के विरोध में आंदोलन हुए, गाँधी जी राष्ट्रीय आंदोलन को समय–समय पर नया मोड़ देते रहे। असहयोग आंदोलन द्वारा विदेशी सत्ता का पाँव डगमगाने लगा। यह वह समय था जब देशबन्धु चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी की नींव डाली यह पार्टी काँग्रेस के नजदीक पड़ती थी कांग्रेस द्वारा सुनियोजित ढंग से आंदोलन चलाया जा रहा था। किन्तु अंग्रेजों के अत्याचार के खिलाफ कुछ लोगों का रवैया अति उग्र था वे ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहते थे, इसी का परिणाम था क्रांतिकारियों ने गुप्त दल का निर्माण किया। ये पूरे देश में फैल गए थे। भगत सिंह द्वारा असम्बेली में बम फेंकना आदि कई घटनाएँ हुई जिससे पता चलता है कि उस समय के भारतीय नवयुवक देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए जोखिम भरे कार्य करने से नहीं डरते थे।

साईमन कमीशन में एक भी भारतीय को नहीं शामिल करने से आंदोलन की आंच और तेज हो गई। 1930 में कांग्रेस ने स्वतंत्रता की घोषणा की और उसी वर्ष नमक सत्याग्रह भी किया गया। सरकार इन आंदोलनों को सख्ती से कुचलने के लिए कार्य करने लगी। भगत सिंह को फाँसी

देकर सरकार ने सोचा कि भारतीय जनता डर जायेगी किंतु ऐसा हुआ नहीं। आंदोलन और तेज गति से चलने लगा। संस्थाओं पर प्रतिबंध, नेताओं को दूर काले पानी की सजा देकर अंग्रेजी सरकार ने अपने दमन की नीति को व्यापक रखा दूसरी ओर स्वतंत्रता के मतवाले और भी उत्साह से जुट गए। भारतीयों का संघर्ष 15 अगस्त 1947 को जा कर सफल रहा और देश स्वतंत्र हुआ। उसके बाद स्वतंत्र भारत का नव निर्माण करना था। अनेक कठिनाइयों के साथ चीन का भारत पर आक्रमण और अन्य राजनीतिक समस्याएँ थी। इस प्रकार दिनकर के रचना साहित्य की पृष्ठभूमि में भारत के राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, फिर राष्ट्र के नव–निर्माण की समस्याएँ थीं। ऐसी ही परिस्थिति में कवि ने रचनाएँ की। हम आगे देखेंगे कि उनके साहित्य में किस प्रकार तत्कालीन परिस्थिति का प्रभाव पड़ा और किस प्रकार कवि से संघर्ष करता रहा। यह तो थी उनके समय की राजनीतिक परिस्थिति अब दिनकर के समय में भारतीय समाज पर विचार करें।

सामाजिक परिस्थिति

भारतीय समाज का विभाजन अवैज्ञानिक ढंग से किया गया। जिसका परिणाम था असमानता का दिनोदिन विकास। जाति–वर्ण पर आधारित समाज में स्तर भेद को स्थान मिला। इस व्यवस्था को धर्म की मुहर लगा दी गई। धर्म का भय पैदा किया गया। फलतः जनता का अंधविश्वास बढ़ता गया। इसी जाति व्यवस्था के द्वारा विभाजित भारतीय समाज को जोड़ने का प्रथम प्रयास गौतम बुद्ध द्वारा किया गया। किंतु वर्ण व्यवस्था एवं वर्ग विशेष में प्रभुत्व के कारण उनका कार्य विफल रहा। विदेशी जातियाँ देश में आती गईं और अपना–अपना साम्राज्य बनाती गईं। अंग्रेजों का आगमन भी इसी क्रम में हुआ था। भारतीय समाज की कमजोरी का लाभ विदेशियों को मिलता रहा। दिनकर के समय का समाज भी कमोवेश उसी पुरानी व्यवस्था के अनुरूप था। दलित एवं पीड़ित वर्ग के प्रति सहानूभूति दबे शब्दों में व्यक्त हो रही थी। किंतु समाज में दलित पीड़ित वर्ग उपेक्षित होता रहा। जन्म ही व्यक्ति की महानता की कसौटी बन गई।

जन्म के कारण उत्तम गुणों वाले को भी अपनी क्षमता के विकास से वंचित होना पड़ा दूसरी ओर जनम की महानता का ढोंग रच कर अवगुणी व्यक्ति ऊँचे पद पर आसीन होते रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के संविधान के मुख्य निर्माता के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने यह साबित कर दिया कि व्यक्ति का विकास तभी होगा जब उसके जन्म की जगह कर्म को महत्व दिया जायेगा एवं समान अवसर मिलेगा। दिनकर ने अपने समाज को गहराई से मापा था। और इसी संदर्भ में उन्होंने 'रश्मिरथी' की रचना की। इस काव्य ग्रंथ की भूमिका में दिनकर लिखते हैं 'मुझे इस बात का संतोष है कि अपने अध्ययन मनन से मैं व्यक्ति के चरित्र को जैसा समझ सका हूँ। वह इस काव्य के बहाने मैं अपने समय में जो कुछ कहना चाहता था उसके अवसर भी मुझे यहां मिल गये हैं' अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में कवि का कहना है वर्ण चरित्र के उद्धार की चिंता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है, कुल जाति का अहंकार विदा हो रहा है। पाठ में जब हम प्रमुख प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे तो विस्तार से सामाजिक चेतना के विभिन्न क्षेत्रों को लेंगे।

आर्थिक पृष्ठभूमि

दिनकर का काल स्वतंत्रता संग्राम से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति से कुछ बाद तक का है। इन दिनों देश की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। अंग्रजी शासन के शोषण की नीति से देश की आर्थिक दशा में गिरावट आती गई और यहाँ का उद्योग नष्ट प्राय हो गया था। राजनीतिक

आंदोलन के समय भी दशा वैसी ही रही। सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब देश की बागडोर हमने अपने हाथों में ली तब देश की गिरी हुई आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयास किया गया। किंतु सत्ता के नशे में चूर लोगों के कारण इसमें फर्क नहीं आया। देश के नव–निर्माण की रूपरेखा बनाई गई लेकिन देश की जनता निर्धन से निर्धनतर होती गई। संपन्न वर्ग संपन्न होता गया। कवि दिनकर ने इस कार्य की निंदा ही नहीं बल्कि कड़ा विरोध किया। हम आगे उनकी रचनाओं के माध्यम से जानेंगे कि किस प्रकार वे अपने ही लोगों द्वारा शोषण की नीति का विरोध करते हैं। सामंतवादी समाज की स्थापना के लिए उन्होंने हर जगह आक्रोश प्रकट किया। इस प्रकार हमने देखा कि कवि का समय सभी दृष्टियों से ऊथल–पुथल का काल था। भारत के इस कठिन काल में दिनकर ने अपनी लेखनी द्वारा नए एवं पीड़ा से मुक्त तथा सभी दृष्टि से आर्दश राष्ट्र के लिए प्रयत्न किया। आइए अब इस कवि की जीवनी के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें–

6.3 राष्ट्रकवि दिनकर

भारतीय पुर्नजागरण के क्षेत्र में जिन कवियों ने योगदान दिया उनमें राष्ट्रकवि 'दिनकर' का विशिष्ट स्थान है। यूँ तो उन्होंने पारंपरिक विषयों को आधार बनाकर काव्य रचनाएँ की किंतु उनमें स्पष्ट रूप से आज के युग की समस्याओं को ही लिया गया है। राष्ट्र परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था ऐसे में एक प्रबुद्ध कवि भला युग से कैसे मुँह मोड़ सकता था। दिनकर ने राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना के लिए ही लेखन किया। नवजागरण के लिए उनके द्वारा लिखा गया साहित्य अत्यंत मूल्यवान है। आइए इस कवि के जीवन एवं साहित्यिक रचनाओं को जाने।

6.3.1 कवि परिचय

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 30 सितंबर सन् 1908 को बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक ग्राम में हुआ था। उनका परिवार साधारण कृषक परिवार था। दिनकर जी जब दो वर्ष के थे तब उनके पिता का देहांत हो गया। माँ ने तीन बालकों को बहुत कठिनाई से पाला। सिमरिया ग्राम गंगा के किनारे स्थित है अतः बाढ़ आदि से उस ग्राम को हमेशा क्षति होती थी। ऐसे माहौल में दिनकर जी की प्रारंभिक शिक्षा शुरू हुई। ग्राम के कुछ दूर पर ही पाठशाला थी। बाद में उनका दाखिला मोकामा घाट के एक विद्यालय में करा दिया गया जो लगभग छह मील दूर था। बालक दिनकर प्रतिदिन छह मील पैदल चलने के बाद स्टीमर लेते फिर विद्यालय पहुंचते थे। सन 1928 में मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद उच्च शिक्षा के लिए वे पटना आए। यहीं से उन्होंने इतिहास विषय में बी. ए. आनर्स किया सन् 1934 में वे बिहार सरकार के सब रजिस्ट्रार पद पर नियुक्त हुए। नौ वर्ष तक इस पद पर कार्य करते समय उन्होंने अपने राज्य की गरीबी का नजदीकी से अध्ययन किया। सन् 1950 में मुजफ्फरपुर के लंगट सिंह कालेज में हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद को सम्भाला। सन् 1952 में वे राज्य सभा के सदस्य बनाए गए। 1964 में भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद पर नियुक्त होने से पहले तक वे राज्य सभा के सदस्य रहे। सन् 1965 में भारत सरकार के हिन्दी सलाहाकार पद पर नियुक्त हुए। सन् 1959 में दिनकर को पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। 1960 में साहित्य अकादमी सन् 1962 में डी.लिट्. तथा सन् 1973 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 24 अप्रैल सन् 1974 को मद्रास में उनका निधन हो गया।

6.3.2 रचनाएँ

दिनकर के अंदर साहित्य रचना की जन्मजात प्रतिभा थी। सन् 1924 में अपने विद्यार्थी जीवन से ही उन्होंने काव्य रचना शुरू कर दी थी। 'छात्र सहोदर' में उनकी पहली काव्य रचना छपी थी। सन् 1935 से 'रेणुका–काव्य संग्रह' के प्रकाशन से उनकी पुस्तकें छपने लगी थी। उन्होंने कुल 40 पुस्तकें लिखी जो इस प्रकार से है।

काव्य

रेणुका, सामधेनी, कुरूक्षेत्र, चक्रवाल, रश्मिरथी, उर्वशी, कोयल और कवित्व, परशुराम की प्रतीक्षा, हारे को हरिनाम, हुंकार,

वैचारिक गद्य

संस्कृति के चार अध्याय, शुद्ध कविता की खोज साहित्यमुखी, भारतीय एकता, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त।

विविध

संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (संस्मरण), दिन की डायरी, मेरी यात्राएँ

बोध प्रश्न– 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. दिनकर का जन्म किस राज्य में और किस वर्ष हुआ?

   .....

   .....

2. उनके छात्र जीवन के समय अंग्रेजों ने किसे फांसी की सजा दी थी?

   .....

   .....

   .....

3. दिनकर को किन–किन पुरस्कारों से सम्मानित किया गया?

   .....

   .....

   .....

4. किस वर्ष उन्हें राज्य सभा का सदस्य बनाया गया और वे कब तक इस पद पर रहे?

   .....

   .....

   .....

5. हिंदी से संबंधित किस पद पर भारत सरकार ने उन्हें नियुक्त किया?

.....

.....

.....

6. उनकी प्रथम काव्य रचना कब और किस पत्रिका में छपी?

.....

.....

.....

.....

7. उन्होंने कुल कितनी रचनाएं की?

.....

.....

.....

.....

8. उनकी संस्कृति और इतिहास विषयक प्रसिद्ध रचना का क्या नाम है?

.....

.....

.....

.....

6.4 दिनकर साहित्यः प्रमुख प्रवृत्तियाँ

दिनकर का जन्म जिस युग में हुआ वह विश्वभर में एक परिवर्तन का युग था। सभी जगह उथल–पुथल मची हुई थी। नए युग का आगमन हो रहा था। सामन्ती व्यवस्था को तोड़कर समानता से भरे समाज के लिए संघर्ष हो रहा था। भारत में इसकी शुरूआत विदेशी सत्ता से मुक्ति के आंदोलन से होती है। भारतीय राजनीति में साम्यवाद का उदय होता है। समानता से पूर्ण समाज की स्थापना के लिए दिनकर जैसे कवि का भी उदय होता है। दिनकर के समस्त काव्य में हमें समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना के दर्शन होते हैं। स्वयं दिनकर एक निर्भीक कवि थे। देश में अंग्रजों का राज्य था। दासता की बेड़ी से देश को मुक्त कराना था तो दूसरी ओर सड़ी–गली पुरानी व्यवस्था के नीचे दबे मानव को निकालना भी था। अपनी डायरी में स्वयं लिखते हैं कवि निर्भीक नहीं होंगे 'हुंकार' रचना में कवि ने युग चेतना को ही व्यक्त किया है। एक उदाहरण देखिए –

'समय–दुह की ओर सिसकते मेरे गीत विकल होय,

आज खोजने उन्हें बुलाने वर्तमान के पल आये ?

शैल–श्रृंग चढ़ समय–सिंधु के आर–पार तुम हेर रहे,

किन्तु तात क्या उन्हें, भूमि का कौन दनुज पथ घेरे रहे

दो वज्रों का घोष, विकट संघात घरा पर जारी है

बहिन–रेणु चुन स्वान सजा लो, दिटक रही चिनगारी है।

रण की घड़ी, जलन की बेला, रुधिर पंक में जान करो,

अपना साकल घरो कुण्ड में, कुछ तुम भी बलिदान करो।

दिनकर अपनी कविताओं के माध्यम से जनता में चेतना लाना चाहते थे। देश को गुलामी की जंज़ीर से मुक्त कराने के लिए लोगों में जोश लाना जरूरी था और दिनकर की कविताओं में ऐसे गुण भरे पड़ें है। आइए उनकी रचनाओं से उदाहरण लेकर हम उनमें व्यक्त राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना की जानकारी प्राप्त करें।

6.4.1 राष्ट्रीय चेतना

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का प्रारंभ 'रेणुका' द्वारा होता है और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में उसका पूर्ण विकास होता है। युगीन अत्याचार अहंकार और आडंबर के नाश के लिए कवि कह उठता है–

'गिरे विभव का दर्प चूर्ण हो
लगे आग इस आडम्बर में,
अहंकार के उच्च शिखर से
स्वामहन अघड आग बुझा दो
जले पाप जग का क्षण भर में।

अंग्रेजों के अत्याचार से भारतीय जनता कराह रही थी इसलिए कवि का मानना था कि अहिंसक आंदोलन से कुछ नहीं होने वाला और इसीलिए उन्होंने अपनी 'हिमालय' शीर्षक कविता में शौर्य तथा शक्ति के लिए आह्वान किया।

'रे रोक युधिष्ठर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।
तू मौन त्याग, कर सिंहनाद
रे तपी आज तप का न काला
नव–युग शंख–ध्वनि कर जगा रही
तू जान, जान मेरे विशाल–'हुंकार'

दिनकर में राष्ट्रीयता कूट–कूट कर भरी हुई थी। लेकिन वे शांति अंहिसा को पूर्ण रूप से मानकर चलने के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि शांति और अहिंसा तभी सार्थक है जब उनका अनुयायी मजबूत हो अगर कोई शक्तिहीन राष्ट्र अहिंसा को अपनाता है तो इसका तात्पर्य

यही हुआ कि वह कायर है। वे ईंट का जवाब पत्थर से देने के पक्षधर थे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत के इतिहास की सबसे बड़ी घटना थी चीन का आक्रमण। इस समय कवि दिनकर ने तमाम भारत के बुद्धिजीवियों तथा कलाकारों को इस युद्ध का मुंहतोड़ जवाब देने के लिए आह्वान किया। वे मांग करते हैं कि अपनी मेघा शक्ति परशुराम के माध्यम से उन्होंने लोगों में राष्ट्रीय चेतना को उभारा–

चिन्तकों! चिन्तना की तलवार गढ़ो रे।
ऋषियों! कृशान, उद्दीपन मन्त्र पढ़ो रे!
योगियों! जागो, जीवन की ओर बढ़ो रे!
बन्दूकों पर अपना आलोक पढ़ो रे!
है जहाँ कहीं भी तेन हमें पाना है,
रण में समग्र भारत को ले जाना है।

कवि परशुराम की मूर्ति का प्रतीत रखता है और एक नए भारत के उदय को दर्शाता है–

है एक हाथ में परशु, एक में कुश है,
आ रहा नये भारत का भाग्य पुरुष है।

गांधी की अहिंसक नीति से दिनकर का विचार अलग था और इसीलिए वे 'महामानव की खोज' शीर्षक कविता में गांधी नीति पर निर्भीकता पूर्वक प्रहार करते हैं।

'उब गया हूँ देख चतुदिर्क अपने
अजा धर्म का ग्लानि वहीन प्रवृतन
युग सतम सुबद्ध पुनः कहता है
ताप कलुष है। आशा बुझा दो मन की।

'हुंकार'

चरण के आक्रमण से राष्ट्रीयता की आहट हुई थी। जीवन मूल्य भंग हुये थे अतः युग की मांग में अनुकूल अपने में दबे हुए आज को भड़क जाने दिया। कवि इतना तिलमिला उठा कि अहिंसा के बचाव के लिए हिंसा को प्रभार ओढ़ाता है –

'गिराओ बम गोली दागो
गांधी की रक्षा करने को गांधी से भागो।

'परशुराम की प्रतीक्षा' में कवि देशवासियों में राष्ट्र की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं –

दासत्व जहाँ है, वहीं स्तब्ध जीवन है,
स्वातन्त्रय निरन्तर समर, सनातन रण है,

स्वातन्त्रय समस्या नहीं आज या कल की जागृति तीव्र वह घड़ी–घड़ी पल–पल की कवि आगे यह कहता है–

तिलक चढ़ा मत और हृदय में हूक दो,
दे सकते हो तो गोली बन्दूक दो।

युद्ध में पराजय से बड़ा कोई पाप नहीं इसलिए वे कहते हैं –
एक वस्तु है ग्राहय युद्ध में, और सभी कुछ देय है,
पुण्य हो कि पाप, जीत केवल दोनों का धेय है।
x x x x x
समर हारने से बढ़कर घातक न दूसरा पाप है।

इसी 'परशुराम की प्रतीक्षा' में कवि ने उन लोगों को फटकारा है जो तटस्थ रहना चाहते हैं। कवि उन्हें चालाक तथा कायर कहता है –

अब समझा, चुप्पी, कदर्यता की वाणी है,
बहुत अधिक चातुर्य आपदाओं का घर है,
दोषी केवल वही नहीं, जो नयनहीन था,
उसका भी है पाप, आँख थी जिसे किंतु जो,
बड़ी, बड़ी घड़ियों में मौन, तटस्थ रहा है।

दिनकर ने काव्य रचना का प्रारंभ अपने विद्यार्थी जीवन से ही कर दिया था। उस समय भारत ब्रिटिश – साम्राज्यवाद के अधीन था। जनता को जगाना तथा जुल्मकारी शासन के खिलाफ उन्हें आंदोलन के लिए तैयार करना उस समय के कवियों का पहला उद्देश्य था। दिनकर इसमें सबसे आगे थे। वे क्रांति को पुकारते हुए लिखते हैं –

युगों से अनय का भार ढोते आ रहे हैं,
न बोली तू मगर हम रोज मिटते जा रहे हैं,
पिलाने को कहाँ से रक्त लायें दानवों को ?
नहीं क्या स्वत्व है प्रतिशोध का मन मानवों को।

'हुंकार–पृ.10

कवि जनताप को अमरीकी और फ्रांसीसी क्रांति का उदाहरण देकर लोगों को क्रांति के लिए प्रेरित करता है तथा अंग्रेजी सरकार को भी सावधान करता है कि जनता की ताकत को अनदेखा मत करो–

'मत खेलो यों बेखबरी में
जन–समुद्र यह नहीं, सिंधु है, यह अमोघ ज्वाला का
जिसमें पड़कर बड़े–बड़े कंगुरे पिघल चुके हैं।
लील चुका है यह समुद्र जाने कितने देशों में
राजाओं के मुकुट और सपने नेताओं के भी,
सावधान जन्मभूमि किसी की चारागाह नहीं है,
घास यहाँ की पहुँच पेट में काँटा बन जाती है।'

दिनकर मानव–मानव में असमानता को नहीं स्वीकारते चाहे शासक हो या शासित सभी को प्रगति का समान अवसर मिलना चाहिए। चाहे शासक देशी हो या विदेशी समानता का भाव रखना चाहिए और इसी नीति के अनुकूल शासन करना चाहिए।

कुरूक्षेत्र रचना में वे भीष्म से कहलवाते हैं –
'धर्मराज! यह भूमि किसी की नहीं क्रीट है दासी,
है जन्मता समान परस्पर इसके सभी निवासी।
'राजतंत्र धोतक है नर की मलिन, विहीन प्रकृति का,
मानवता की ग्लानि और कुत्सित कलंक संस्कृति का।

कुरूक्षेत्र, पृ–51, 144

अन्यायी शासक के खिलाफ जब जनता एकजुट होकर उठ खड़ी होती है तो उसकी ताकत के आगे कोई नहीं टिक सकता–

'हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती है
सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है,
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ,
वह जिधर चाहते, काल उधर ही मुड़ता है।

जनता की शक्ति एकत्रित होकर काल का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार कवि ने विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से लोगों में राष्ट्रीय चेतना फैलाने का सफल कार्य किया। आइए अब देखें कि तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त असमानताओं को दूर करने के लिए उन्होंने क्या किया।

6.4.2 सामाजिक चेतना

भारतीय समाज का जिस दिन जन्म को आधार बना कर विभाजन हुआ उस दिन ये इसमें दुर्बलता आती गई उससे पहले का भारतीय समाज प्रगति की ओर अग्रसर था। बड़े–बड़े साम्राज्य की स्थापना किसी वर्ग विहीन समाज की ही देन हो सकती है न विखंडित समाज की वैज्ञानिक प्रगति ने विश्व को छोट बना दिया है। अर्थात आज अनगिनत ऐसे आविष्कार हो चुके हैं जिसमें भेद–भाव का कोई स्थान नहीं रहना चाहिए। पुराने रीति–रिवाजों का कोई स्थान नहीं ऐसे रीति रिवाज या अंधविश्वास जिनसे समाज विकसित न हो रहा हो, जिनमें मानवता कराह रही हो उसका नाश करना ही बुद्धिजीवियों का पहला कर्तव्य होना चाहिए और इस कार्य को करने के लिए दिनकर जैसे महान् कवि पीछे नहीं हटते।

यही व्यवस्था भारतीय समाज के दुःख का सबसे बड़ा कारण है। उस पर प्रहार करते हुए कवि कह उठता है–

'आह, सभ्यता के प्रांगण में आज गरल वर्षन कैसा
दीन दुखी असहाय जनो पर अत्याचार प्रबल कैसा ?

ब्राह्मण वर्ग में अनीति के विरूद्ध क्रांति का विगुल बजाने वाले महात्मा बुद्ध थे। रेणुका में 'बोधिसत्व' रचना के माध्यम से कवि ने भारतीय समाज के कोढ़ अर्थात् जाति व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया है। अछुतोद्धार आदि समस्या को इसमें लिया गया है। व्यक्ति का उज्जवल चरित्र ही सब कुछ है जाति का उसमें कोई स्थान नहीं–

'नर का गुण उज्जवल चरित्र है, नहीं वंश, धन धाम'

रश्मिरथी–पृ–6

कर्ण चरित्र के माध्यम से कवि ने अपनी रचना रश्मिरथी में प्रमाणित किया है कि जाति का व्यक्ति के चरित्र
से कोई संबंध नहीं।

भाग्य आदि अंधविश्वासों से मानव का कल्याण नहीं होने वाला उसे तो कर्म पर विश्वास रखना चाहिए –

उद्यम से विधि का अंक उलट जाता है,
किस्मत का पासा पौरूष से हार पलट जाता है।

'समर शेष है' इसकी रचना कवि ने 1954 में की। इसमें उन्होंने समतामूलक समाज बनाने का आह्वान किया है।

सकल देश में हालाहल है
दिल्ली में हाला है।
दिल्ली में रोशनी, शेष,
भारत में अधिपाला है।

समा शेष है–पृ–76

'सबार ऊपरे मनुष्य' यह विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मूल मंत्र था। इस वैज्ञानिक युग में भेद उपभेद, ऊंच–नीच, विवेक रहित मान्यताओं का कोई स्थान नहीं। विशेष रूप से भारत जैसे देश में जहाँ जातिव्यवस्था लोगों के नस–नस में समाई हुई है उसे दूर करना आवश्यक है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दिनकर ने 'रश्मिरथी' की रचना की है। यह वास्तव में युग की कुरूपा व्यथा गाया है। कर्ण के चरित्र पर आधारित इस काव्य रचना के माध्यम से कवि ने आज जाति व्यवस्था जैसे भयंकर ज्वलंत समस्या पर प्रहार किया है। कर्ण उन तमाम गुण संपन्न व्यक्तियों का प्रतीक है जो अमानवीय जाति व्यवस्था का शिकार हैं। वह तमाम उपेक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

मैं उनका आदर्श, जिन्हें कुल का गौरव ताड़ेगा,
नीच वंश जन्मा कह कर जिनको जग धिक्कारेगा।
जो समाज की विषम बहिन में चारों ओर जलेंगे,
पत्र–पत्र पर झेलते हुए बाधा निःसीमा चलेंगे।

रश्मिरथी, पृ.60

कर्ण ललकारता है और चुनौती देता है–
पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो मेरे भुजबल से,
रवि समान रोपित ललाट से, और कवच कुंडल से।

वर्ण व्यवस्था के संचालक कृपाचार्य बड़ी धूर्तता से कर्ण को अर्जुन से युद्ध की आज्ञा नहीं देते। कर्ण अपमानित होता है, किंतु दुर्योधन उसे अंग देश का राजा बना कर सम्मानित करता है। अर्जुन को रण में पराजित करने की मन ही मन प्रतिज्ञा करके कर्ण अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए आगे की योजना बनाता है। उसे पता है कि द्रोणाचार्य उसे शिक्षा नहीं देगा। वह जानता है कि उस युग के सबसे बड़े धनुर्धर 'एकलव्य' का द्रोणाचार्य ने क्या हाल किया। अंगूठा कटवा कर उसे हमेशा के लिए पंगु बना दिया। अतः छल से वह परशुराम का शिष्य बनता है। अपने को ब्राह्मण पुत्र बता कर ही वह ऐसा कर पाता है किंतु उसकी आत्म ग्लानि द्वारा कवि ने उस तमाम उपेक्षित वर्ग की व्यथा ही व्यक्त की है जिसके पास सामर्थ्य तो है किंतु जाति व्यवस्था के कारण वे अपना सामर्थ्य दिखाने में विवश हैं –

हाय कर्ण तू क्यों जनमा था ? जनमा तो क्यों वीर हुआ
कवच और कुंडल भूषित भी तेरा अघम शरीर हुआ।
आगे कवि ऐसे विषमता मूलक समाज पर व्यंग्य करता है और कहता है।
धँस जाए वह देश अतल में, गुण की जहाँ नहीं पहचान
जाति गोत्र के बल से ही आदर पाते है जहाँ सुजान।

कुरूक्षेत्र पृ–15

आगे की पंक्तियों में पूरे भारतीय समाज के सामने एक प्रश्नचिन्ह रखा जाता है –
कौन जन्म लेता किस कुल में आकस्मिक ही है यह बात,
छोटे कुल पर, किंतु, यहाँ होते तब भी कितने आधात!
हाय, जाति छोटी है, तो फिर सभी हमारे गुण छोटे,
जाति बड़ी–तो बड़ें बने वे, रहे लाख चाहे छोटे।

कुरूक्षेत्र–पृ–15

कुरुक्षेत्र में ही दिनकर ने यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि जाति, धर्म, वंश से किसी व्यक्ति के गुण को मापा नहीं जा सकता। व्यक्ति का व्यक्तित्व स्वयं ही निखरता है। चाहे झोपड़ी हो या महल कहीं भी गुण सम्पन्न व्यक्ति हो सकता है, इसी तरह किसी भी जाति का व्यक्ति हो उसमें अच्छे गुण भी हो सकते हैं और बुरे भी।
इसलिए जाति वर्ग की कोई सार्थकता नहीं –

नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में,
अमित बार खिलते वे पुर से दूर कुंज कानन में
समझे कौन रहस्य? प्रकृति का, बड़ा अनोखा हाल,
गुदड़ी में रखती चुन–चुनकर बड़े कीमती लाल।

कुरुक्षेत्र, पृ–2

6.4.3 सांस्कृतिक चेतना

दिनकर अपने जीवन के तैंतालीस वर्षों तक लगातार साहित्य रचना करते रहे। पद्य और गद्य के माध्यम से उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को फैलाने का सफल कार्य किया। उनका मानना था कि साहित्य मानव के लिए उपयोगी होना चाहिए। मात्र मनोरंजन या

मन को आनंद प्रदान करने वाला साहित्य साहित्य नहीं, साहित्य वही है जो मनुष्य के दिलो–दिमाग को प्रभावित करे और व्यक्ति कुछ अच्छा करने के लिए प्रयत्नशील हो जाए। हमने देखा कि किस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन के समय से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति और चीनी आक्रमण के समय समयानुकूल साहित्य रच कर कवि ने भारतीय को राह दिखाई। वहीं भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। तब हम विचार करेंगे कि उन्होंने भारत में किस प्रकार सांस्कृतिक चेतना जगाई। दिनकर को अपनी भारतीय संस्कृति पर गर्व था। लेकिन केवल अतीत की घटनाओं का स्मरण कर ही वे नहीं रुकने वाले थे। अतीत की घटनाओं का उदाहरण देकर वर्तमान समय में समाजोयोगी कार्य के लिए उन्होंने काव्य के माध्यम से भारतीय जनता के सामने कई प्रश्न रखे। उन्होंने यह प्रश्न रखा कि क्या केवल जाति वंश के आधार पर ही व्यक्ति को प्रगति का अवसर दिया जायेगा। क्या परंपरा को अपना कर ही राष्ट्र की उन्नति संभव है। क्या भारतीय जनता को प्रगति का समान अवसर नहीं दिया जायेगा। उन्होंने यह भी प्रश्न रखा कि इस वैज्ञानिक युग को हमें परिचय से नहीं सीखना होगा? इत्यादि सन् 1976 में बरेली कॉलेज के तेरहवें दीक्षान्त समारोह में दिये गए भाषण का कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है जिससे आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि वे किस प्रकार की सांस्कृतिक चेतना चाहते थे –

''पश्चिम के समस्त देशों में आधुनिकता अपने संघर्ष में जीती है और प्राचीनता पराजित हुई है। भारत में यह संघर्ष चल रहा है। भारत भी नवीनता को प्राप्त कर बदलता रहा है, पर इसकी विचित्रता यह है कि यह जितना ही बदलता है अपने आत्म स्वरूप के अधिक निकट पहुँचता है। यही विलक्षणता भारत का अपना गुण है और इसी गुण के कारण भारत के लोग यह आशा लगाये बैठे हैं कि आधुनिकता को अपना लेने के बाद भी भारत, भारत रहेगा और संसार के सामने एक नया नमूना पेश करेगा।''

दिनकर अपने देश के उस पुराने मूल्यों को भी नहीं छोड़ना चाहते जिनसे मानवता का विकास होता है। किंतु उन घिसेपिटे अंधविश्वास को अवश्य ही त्यागने की बात कहते हैं, जो मानवता के विकास में बाधक है। भारत के सांस्कृतिक रूप का सुंदर उदाहरण हमें उनकी रचना नीलकुसुम, 'किसको नमन करूँ' में देखने को मिलता है –

'भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष कर रहा है,
एक देश का नहीं, शील यह भूमण्डल' भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,

देश–देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्कर है।

दिनकर 'सवार उपरे मानुष' में विश्वास रखते थे। वे बुद्ध के मूल मंत्र को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। संसार को बुद्ध का दिया गया संदेश था मानवता के कल्याण में जुट जाओ। इसी को कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में पिरोया है –

'श्रेय वह विज्ञान का वरदान,
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान।
श्रेय वह नर–बुद्धि का शिव–रूप अविष्कार,
ढो सके जिसके प्रकृति सबके सुखों का भार।
मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाए,

सुख समृद्धि विधान में नर के प्रवृति झुक जाय।

बोध प्रश्न– 2
निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. दिनकर की किस रचना में राष्ट्रीयता का प्रारंभ होता है?
   .....
   .....

2. 'परशुराम की प्रतीक्षा' की रचना किस उद्देश्य से की गई?
   .....
   .....

3. 'हिमालय' शीर्षक कविता में कवि दिनकर का क्या संदेश है?
   .....
   .....

4. गांधी के अहिंसक विचार से क्या दिनकर सहमत थे?
   .....
   .....

5. गांधी की रक्षा के लिए गांधी से भागने की सलाह कवि ने क्यों दी ?
   .....
   .....

6. तटस्थ लोगों के प्रति दिनकर का क्या विचार था?
   .....
   .....

7. अमरीकी तथा फ्रांसीसी क्रांति का उदाहरण देकर कवि क्या संदेश देना चाहता है ?
   .....
   .....

अभ्यास

1. दिनकर की सामाजिक चेतना को दस बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।
   .....
   .....
   .....
   .....

.....

.....

.....

.....

6.5 सारांश

दिनकर का समय स्वतंत्रता संग्राम से लेकर प्राप्ति का है। कवि ने स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में अपनी रचनाओं के माध्यम से चेतना फैलाने का कार्य किया। चीनी आक्रमण के समय भी उन्होंने लोगों में उत्साह शक्ति संचरित करने का कार्य किया आप दिनकर के समय राजनीतिक सामाजिक आदि स्थितियों के बारे में बता सकते हैं।

- एक गरीब किसान परिवार में जन्म लेने के बावजूद वे अपनी मेहनत एवं मेधा शक्ति के बल पर देश की संसद तक पहुँचे। आप उनकी जीवनी के बारे में बता सकते हैं।
- कुरूक्षेत्र, सामधेनी, रश्मिरथी, संस्कृति के चार अध्याय आदि महत्वपूर्ण ग्रंथ के रचनाकर उन्होंने भारतीय संस्कृति को समयानुकूल ढालने का प्रयास किया।

6.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1, देखे भाग 6.3,
बोध प्रश्न 2 देंखे भाग 6.4
अभ्यास 1 देखे भाग 6.4

6.7 उपयोगी पुस्तकें

डॉ. पन्ना, दिनकर के काव्य में युग चेतना, उषा पब्लिसिंग हाउस जयपुर–जोधपुर

डॉ. पुष्पा ठक्कर, दिनकर–काव्य में युग चेतना, अरविन्द प्रकाशन बम्बई

सम्पादक डॉ. गोपालराय–डॉ सकलदेव शर्मा, राष्ट्रकवि दिनकर, ग्रन्थ निकेतन पटना

डॉ. सावित्री सिन्हा, दिनकर, राजपाल एण्ड संस दिल्ली।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY